॰ ओ३म् ॰

आनन्द-गायत्री-कथा

प्यारी माताओं तथा सज्जनों ?

'नौ द्वारे का पिंजरा, ता में पंछी पौन।
रहने में अचरज बड़ा, गये अचम्भा कौन।।

यह है मनुष्य-शरीर की आकृति। एक पिंजरे में नौ दरवाजे हैं। सब खुले हुए' इसमें प्राण रूपी पन्छी रहता है। द्वार खुले हैं, तब भी यह जाता नहीं। आश्चर्य की बात तो यह है, चला जाय तो इसमें विचित्र क्या है ? परन्तु मनुष्य के इस शरीर को महाभारत के अन्दर सब से उत्तम तथा सबसे बड़ा भी कहा गया है। महाभारत कहता है---"सुन, तुझे रहस्य की एक बात बताऊँ' मनुष्य से अधिक उत्तम व श्रेष्ठ और कुछ नहीं, और इसी शरीर के विषय में जिसे महाभारत में सब से उत्तम तथा सबसे बड़ा कहा गया है जिसे कवि ने नौ द्वारे का पिंजरा कहा, आजकल के विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि यह कुछ भी नहीं। इसमें अधिक से अधिक एक छटांक गन्धक है, जिससे दियासलाई की सौ तिलियां बन सकती हैं केवल इतनी मेदा (चरबी) है कि साबुन की सात टिकियां बन सकती हैं। एक सेर खांड है, दो पाव अमूनिया, दो छटांक नमक' छत्तीस सेर पानी और इतना लोहा कि जिससे दो इंच लम्बी कील बन सके। यह हिसाब गलत नहीं वास्तव में मनुष्य शरीर की असलीयत यह है।

तब महाभारत ने इस शरीर को सबसे बड़ा और सब से उत्तम कहा तो क्यों ? क्यों महाभारत के ऋषि ने कहा—"देख, तुझे रहस्य की एक बात बताता हूँ, संसार में मनुष्य शरीर से उत्तम और कुछ नहीं है।'

किन्तु केवल महाभारत ने ही यह बात नहीं कही। अथर्ववेद के १४ वें अध्याय के दूसरे सूक्त में ईश्वर की अमर कविता में जिसे

वेद कहते है, इस कविता में जो कि न कभी बूढ़ी होती है, न मरती है, इस शरीर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन आया है।

अर्थ यह है:—

"वह कौनसा महान शिल्पी है, जिसने इस शरीर का निर्माण किया।"

ज्यों २ इस शरीर को देखिए त्यों २ आश्चर्य होता है कि इसको कैसा बना दिया, इतने रन्ध्र है इसमें, इसके बावजूद इसके अन्दर वाला भाग कर कहीं जाता नहीं।

'नौ द्वारे का पिंजरा, ता में पंछी पौन।'

किन्तु केवल नो द्वार ही तो नहीं, इस शरीर के अन्दर दिन और रात में एक लाख तेरह हजार बार हृदय धड़कता है। इस से कुछ कम बार सांस आता और जाता है। बाहर आता है और फिर अन्दर चला जाता है। बाहर ही क्यों नहीं रह जाता? निकल क्यों नहीं जाता कितना आश्चर्य होता है यह सब कुछ सोच कर, किन्तु केवल यही क्यों? इस शरीर को बनाने वाले की कारीगरी किसी भी तरह गलत नहीं होती। दर्पण में अपना मुख देखिये यह आंख नाक, मुंह सबके सब इकट्ठे एक ही स्थान पर क्यों रख दिये बनाने वाले ने? तनिक विचार कीजिये। यदि ये एक स्थान परी न होते, तो क्या होता सोचिये—आंख यदि सिर के पीछे होती, नाक सिर के ऊपर बालो में होती और मुंह वहीं होता जहाँ अब है, तो क्या होता? यह देखने के लिये कि खाने को क्या है हम हाथ में पकड़े ग्रास को सिर के पीछे ले जाते। यह देखने के लिये कि इसकी गन्ध कैसी है—सिरके ऊपर ले जाते जितनी देर में वह मुंह के पास पहुँचता, उतनी देर में यदि उसमें कुछ पड़ जाता, कोई दुर्गन्ध मिल जाती तो हमें पता न लगता, परन्तु मनुष्य-शरीर को बनाने वाले शिल्पी ने इन

सबको एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया। अब हाथ ग्रास लेकर

ऊपर उठता है, आँख देखती है कि इसमें कोई पतंगा, मिट्टी या कंकड़ तो नही है और कोई ऐसी वस्तु तो नहीं जिसको खाना नहीं चाहिए। आँख पास कर दे, तो नाक सूंघती है कि बासी तो नहीं, दुर्गन्ध तो नही, तब ग्रास मुख में जाता है और वहाँ बत्तीस सिपाही बैठे हैं। ग्रास के एक २ भाग का वे पूर्ण निरीक्षण करते है, एक २ अवयव को। तीक्ष्ण तलवारें लेकर वे खड़े हैं। कोई भी कठोर वस्तु, कोई भी ऐसा पदार्थ जो उन के सामने सिर झुकाकर नरम न हो जाये, उनके पहरे में आगे नहीं जा सकता। दाँत भी पास कर दें तो जिह्वा देखती है कि स्वाद कैसा है, पदार्थ दूषित तो नहीं है, पुराना गला सड़ा तो नहीं है और जब वह भी आज्ञा दे दे तब गले में लटकता हुआ कब्जा उसे पेट जाने की आज्ञा देता है। इसकी आज्ञा के बिना प्रत्येक वस्तु के लिए इस शरीर के बाहर "नो ऐडमिशन—प्रवेश निषिद्ध है" लिखा है। साधारण सी बात हैं यह, किन्तु सोचने पर कितनी बड़ी मालूम होती है। इसीलिये इस शरीर को देखकर 'सबसे बड़ा तथा सब से उत्तम' कहा गया।

तैत्तिरीय उपनिषद् में एक कहानी आती है कि संसार में जब सभी शरीर बन चुके तो ऋषियों और योगियों के सूक्ष्म शरीर इस संसार में आये। ईश्वर के बनाए हुए सभी शरीरों को उन्होंने देखा। घोड़े का शरीर, बैल का, ऊंट का, हाथी का, मोर का, दूसरे पक्षियों का। अन्त में उन्हों ने मानवीय शरीर का निरीक्षण किया। देखते ही वे बोले—ये प्रिय हैं। यह सुन्दर है, और तब इस में उन्होंने प्रवेश किया। मानव शरीर को उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया। तभी से मानव शरीर को ऋषि-भूमि कहते हैं। सात ऋषि इस में रहते हैं पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, छटा मन तथा सातवीं बुद्धि।

परन्तु वेद और उपनिषद इस शरीर को केवल ऋषि-भूमि

कह कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। ऋषि-भूमि कहने के बाद उसे देवपुरी भी कहा—'आठ चक्र नौ द्वार वाली देवताओं की पुरी अयोध्या है यह।' ऐसा इसका उल्लेख किया है। इस प्रकार इसको देवपुरी कहा गया। परन्तु ऋग्वेद ने इससे भी आगे बढ़कर ब्रह्मपुरी कहा अपने मधुर शब्दों में उसने घोषणा की-'यह ब्रह्मपुरी है।' केवल यही एक शरीर है जिसमें परमात्मा के दर्शन होते हैं। यही एक शरीर है जिसमें आत्मा अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। ऐसा है यह शरीर यह नौ द्वारों का पिंजरा इसीलिये उसको सबसे बड़ा तथा सबसे उत्तम कहा गया है। किन्तु हाय रे मानव! इतनी अमूल्य वस्तु को प्राप्त करके भी तू इसके मूल्य को परख नहीं सका।

सुनो', एक था दुर्ग। वह दुर्ग अति विशाल था। चौरासी लाख उसके द्वार थे और एक के अतिरिक्त सभी द्वार बन्द। एक निर्धन नेत्र-हीन प्राणी उस में कारावास भोग रहा था। वह खुजली के रोग से ग्रस्त, नेत्र-विहीन था, बाहर जाने का मार्ग मालूम नहीं था। किसी ने उसको दुःखी देखकर पूछा—'क्या चाहते हो?" अन्धे ने हाथ जोड़ कर कहा—'इस दुर्ग से बाहर जाना चाहता हूँ। इसके दुःखों से दुःखित हो चुका हूँ, इसके अन्धकार से ऊब चुका हूँ। पूछने वाले को करुणा आ गई। 'सुन, अभागे! चौरासी लाख द्वार हैं यहां, किन्तु एक के अतिरिक्त सभी बन्द हैं। उनके साथ टकराने से कुछ लाभ नहीं। इस दीवार पर हाथ रखकर चलता जा। जहां पर खुला द्वार होगा, वहाँ से बाहर निकल जाना। अन्धे ने कहा—'मेरा हाथ दीवार पर रख दो।' और वह चलता गया। एक द्वार के बाद दूसरे द्वार की ओर बढ़ता गया। वह भी बन्द, वह भी बन्द, खुजली होने लगी। दीवार से हाथ उठाकर खुजाने लगा और चलता गया। इस प्रकार खुला द्वार निकल गया। परन्तु फिर

जब हाथ रक्खा तो द्वार बन्द था। फिर चलता गया। सारा चक्कर काटकर खुले द्वार के पास पहुंचा, तो फिर खुजली। फिर द्वार निकल गया। इस प्रकार वह चला जाता है।

आत्मा ही वह नेत्रहीन व्यक्ति है। चौरासी लाख द्वार, चौरासी लाख योनियां हैं। खुला द्वार मानव- शरीर है। खुजली वह वासनामयी अग्नि है, जो मनुष्य को यह देखने नहीं देती कि द्वार खुला है। खुजली करने में स्वाद आता है अवश्य, रक्त स्राव होने लगता है, व्रण भी बढ़ जाता, है किन्तु आकांक्षाओं की यह खुजली विश्राम तो लेने नही देती। इसे दबा सको तो द्वार खुला है, बाहर चले जाओ। नहीं तो घूमते रहो इसी दुर्ग में।

यह है मानव-शरीर की उत्कृष्टता। यह है वह कारण जिस से इसको सब से बड़ा और सब से श्रेष्ठ कहा गया। इस को ऋषिभूमि, देवपूरी और ब्रह्मपुरी कहा गया। यह मोक्ष का द्वार है। कई लोग इस बात को सुन कर कहते हैं—'हाय, हमने तो यह जीवन व्यर्थ खो दिया।, कई लोग अपने जन्मदिवस मनाते हैं, प्रसन्न होते हैं कि अब चालीस वर्ष के हो गये, अब पचास के, अब साठ के। मैं इनकी प्रसन्नता देखता हूं तो चकित होता हूँ। अरे! प्रसन्नता किस कारण से? जिस अमूल्य जीवन को नष्ट कर दिया, उसकी प्रसन्नता मनाते हो। प्रसन्नता के अतिरिक्त यह सोचो कि शेष क्या है! चालीस, पचास, साठ वर्ष तुमने खुजली करने में विता दिये; खुला द्वार निकला जाता है। हो सके तो सम्भलो। बाहर चलने की तैयारी करो। अन्यथा फिर वही बन्द दुर्ग है। फिर वे ही तिरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे द्वार हैं।

यह शरीर बहुत समय बाद मिलता है और बहुत कठिनता से प्राप्त होती है। यह स्वर्ग के योग्य नहीं है। यह देवपुरी,

ऋषिपुरी और ब्रह्मपुरी है। यह मन्दिर है, जिस के अन्दर प्रभु का दर्शन होता है। इसकी रक्षा करो अवश्य। इसको तुच्छ समझ कर नष्ट न होने दो। यह तुम्हारे अन्तिम ध्येय तक पहुँचने का साधन है। यह इसलिए मिला है तुम्हें कि उस मन्दिर में पहुंच सको, जहां असीम कल्याण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

परन्तु आजकल के विज्ञानवेत्ता तो यह भी नहीं जानते कि यह शरीर क्यों मिला है ? उनके लिये यह शरीर थोड़ी सी गन्धक, थोड़ी सी खांड थोड़ा सा असोनियां, थोड़े लोहे और छत्तीस सेर पानी के अतिरिक्त और भी कुछ नहीं। वे शरीर को देखते है, उसके आन्तरिक तथा वाह्य रूप को देखते हैं, परन्तु उस से आगे नहीं बढ़ते। यह नहीं जानते कि उस में एक और पदार्थ भी है 'आत्मा, इस शरीर के अन्दर आकर कर्म कीं रस्सी को पकड़ कर वह कभी ऊपर उठता है, कभी नीचे गिरता है। गिरता है तो इतना गिरता है कि पतन की सीमा नहीं रहती। उठे तो इतना चढ़ जाता है कि ऊँचाइयां भी अभिभूत हो जायें। ये दोनों बातें शरीर में होती हैं 'आत्मा, का पतन तथा उत्थान। इसलिए शरीर सब से बडा तथा सब से श्रेष्ट है। आत्मा के कारण वह बड़ा है और आत्मा के कारण ही श्रेष्ट हैं।

जो लोग आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही करते, उन से मैं पूछता हूँ कि बताओ—'आत्मा के बिना यह शरीर है क्या ? मैं ऐनक पहनता हूं न ! पढ़ने के समय उतार देता हूं, किंतु अनेक व्यक्ति ऐसी ऐनक पहनते हैं जो कि पढ़ने के समय लगाते हैं। बहुधा वह कहते हैं ,अच्छी, ऐनक लाना भाई ! ठीक दिखाई नहीं देता ।, अब क्या ऐनक देखती है ? आँख की पुतली को बन्द करके उस पर एक नही, चार ऐनक लगा दीजिए कुछ दिखाई नहीं देता आँख न हो तो ऐनक व्यर्थ है।

तब क्या आँख देखती हैं ? नहीं, आपने कई बार देखा होगा कि कई लोगों की आँखें अच्छी भली होने पर भी वे देख नहीं पाते। आँख नहीं देखती। आँख के पीछे बैठी हुई एक और वस्तु देखती है। योगी लोग इसे रूप तन्मात्रा कहते हैं, किंतु मनुष्य संज्ञा शून्य हो जाये, उसका मन सो जाये तो रूप तन्मात्रा भी नहीं देखती। वह तो केवल मन की सहायक है। मन जागे तो वह जागती है, मन सो जाये तो वह सो जाती है तब क्या मन देखता नहीं मन के पीछे भी एक आत्मा बैठा है, वह देखता है। आत्मा चला जाये, तो न मन देखता है और न रूप तन्मात्रा काम करती है और न खुली आंख को दिखाई देता है। न ऐनक किसी काम आती है। आत्मा प्रेरणा करे तो मन जागता है। मन जागे तो रूप- तन्मात्रा जागती है, रूप-तन्मात्रा जागे तो आंखें देखतीहैं। आंखें देखें तो ऐनक में से दृष्टिगत होता, है नहीं तो ऐनक व्यर्थ है। फिर ऐनक और आंख ही क्यों ? इस शरीर में प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की यही दशा है। नासिका सांस लेती हैं,जिह्वा से उच्चारण होता है, हाथ गति करता है। यह सब कुछ आत्मा की प्रेरणा से ही, आत्मा न हो तो सब कुछ होकर भी कुछ नहीं रहता। आत्मा के कारण यह शरीर सब से बड़ा तथा सबसे श्रेष्ट है। वह चला जाए, तो यही शरीर जिसे देवपुरी, ब्रह्मपुरी, ऋषिपुरी कहा गया है व्यर्थ होकर रह जाता है। तब हम सोचते हैं कि किसी न किसी प्रकार से इसे ठिकाने लगा दें। मरने वाला मर जाये तो कुछ देर तक लोग उस के साथ लिपटे रहते हैं, कुछ देर तक रोते हैं—कुछ देर तक शोक करते हैं और फिर चुप होकर प्रतीक्षा करते हैं कि इस शव को उठा कर ले जाये। न ले जाये तो कहते हैं कि जल्दी करो, दुर्गन्ध उत्पन्न हो रहा है।

हाय रे ! मष्नुय ! कितना बड़ा है तू और कितना तुच्छ !

वही शरीर जिसको प्रेम से रखा जाता था, जिसके कुछकष्ट होने पर ही सारा चिन्तित हो जाता था, जिसका सिर दुखने पर डाक्टर, वैद्य, हकीम दौड़े आते थे। उसके विषय में अब कहते हैं - "ले जाओ इसे, अब जल्दी करो, जला दो।,, किसी मनुष्य का बहुत अधिक अपमान करना हो तो उसे पितृ-घातक कहते हैं। "पिता को मारने वाला' इससे बड़ी शायद कोई गाली नहीं, किन्तु पिता के अन्दर से आत्मा निकल जाये तो बेटा अपने हाथ से उसे आग लगाता है। दो-दो मन के भारी लकड़ उसकी छाती पर रख देता है सरकण्डों से ढांप देता है। तब तो उसे कोई पितृ-घातक नही कहता। क्यों! इसलिये कि यथार्थ पदार्थ तो निकल गया यथार्थ पदार्थ के कारण ही यह शरीर सब से बड़ा तथा सबसे श्रेष्ट था। वह चला गया, तो अब यह कुछभी नहीं किन्तु हम इसी यथार्थ वस्तु (पदार्थ) को बार-बार भूल जाते हैं। पंजाबी कहावत के अनुसार कई लोगों के लिए यह शरीर ही सब कुछ बन कर रह जाता है। "जीओ बेटा जी! तू ही पुत्र तू ही धी।" ऐसा कह कर वे इसकी ही सेवा में लगे रहते हैं। मैं शरीर की रक्षा के विरुद्ध नहीं। इसकी रक्षा करनी चाहिये अवश्य। वेद भगवान भी इसकी रक्षा करने को कहता है। अथर्ववेद ने इस शरीर को रथ कहा है। ऐसा रथ जो सुख देने वाला है' जिसमें अमर आत्मा बैठा है। जिसको चलाकर आत्मा भगवान के पास पहुंच जाता है ऐसे रथ की रक्षा तो करनी ही चाहिये। शरीर की रक्षा करना हमारा धर्म है।

(इस समय स्वामी जी ने अपनी घड़ी को देखा। हंसते हुए बोले—"लो बीस मिनट तो ये शरीर ही ले गया। समय रह गया थोड़ा अभी मुझे बहुत कुछ कहना है")

किन्तु यह शरीर इतना मूल्यवान है कि इसका दर्शन जरूरी था। यह सब से श्रेष्ट होता है उस समय, जब मानव शरीर का

ठीक ठीक उपयोग हो। तुच्छ लगता है तब जबकि इसका उचित प्रयोग न हो। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसको उचित रीति से प्रयोग में लाने का साधन क्या है? कौन सी विधि है कि जिससे इस रथ में बैठा हुआ आत्मा अपने ध्येय को प्राप्त करे साधन स्पष्ट तथा सीधा है। मन को वस में करके सीधे मार्ग पर चलो, किन्तु मन को वश में करने की बात को याद करके भगवान राम भी रोये थे गुरू वशिष्ठ के सामने, अर्जुन भी रोये थे भगवान कृष्ण के सामने' जब'तक मन बश में न हो,तब तक सफलता नहीं मिलती। तब मन को बशमें करने का साधन ढूंढना चाहिये इस साधन की बात इस समय नहीं कहता, मन तो शरीर का एक अवयव है' जिसका वर्णन करते हुए मुझे गायत्री-मंत्र तक पहुँचना है। यह शरीर इतना मूल्यवान है कि यह सबसे बड़ा और सबसे उत्तम है। इसके कल्याण का सबसे बड़ा साधन और सबसे सरल साधन गायत्री मंत्र है।

कुछ लोगों ने इसका अभिप्राय यह समझा कि शेष सब कार्यों को तिलाञ्जलि देकर, संसार को त्याग कर किसी कन्दरा में बैठकर गायत्री मन्त्र का जाप करते जाओ, तो इससे कल्याण हो जायेगा किन्तु यह बात तो ठीक नहीं। ईश्वर ने इस सृष्टि का निर्माण किया तो इसलिये नहीं कि आप उसे छोड़कर जंगल में जा बैठें किसी पर्वत की कंदरा में जाकर आप अपने को बन्द करलें। यदि ईश्वर की इच्छा यही होती तो संसार में केवल कन्दरायें तथा जंगल ही बना देता ऐसा करने के स्थान में यदि उसने संसार को इतना सुन्दर बनाया तो क्यों? इसी मनुष्य के लिये जो उसकी सबसे बड़ी तथा सर्वोत्तम रचना है इसलिये कि इस संसार में रह कर इसका उपयोग करें वह अपने धर्म का पालन कर सके। अब प्रश्न होता है कि धर्म क्या है?

वेद भगवान ने धर्म की जो परिभाषा बताई वह आपको सुनाता

हूँ । वेद के अनुसार धर्म वह है जिससे लोक तथा परलोक दोनों का कल्याण हो ।

कुछ लोगों ने धर्म का अभिप्राय समझा 'वैराग्य' अर्थात् सब कुछ त्याग करना, संसार को तिलाञ्जलि दे देना । यह सर्वथा गलत है । वेद स्पष्टतया कहता है कि धर्म से सन्तान, धन, स्वास्थ्य राज्य' कीर्ति, बल सब कुछ प्राप्त होता है । यदि यह सब कुछ धर्म से प्राप्त होता है, तो फिर उन सबको छोड़ देना धर्म कैसा हुआ समय आने पर इन सबों को छोड़ देना भी होता है। उस समय छोड़ना ही धर्म होता है, परन्तु प्रारम्भ में ही छोड़ना या समय से पूर्व त्याग धर्म नहीं है । त्याग से धर्म अधूरा रहजाता है । जीवन का अभ्युदय ब्रह्मचर्य आश्रम से होता है । इसका पालन करना उतना ही आवश्वक धर्म है जितना कि समय आने पर सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होना और उसका पालन करना । ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम भी उतना ही आवश्यक है । विवाह के समय जो मंत्र पढ़े जाते हैं उनमें से दो मंत्र मैं आप को सुनाता हूँ । उनसे ज्ञात होता है कि गृहस्थाश्रम वास्तव में क्या है ? कितना महान आदर्श है इसका ? कितनी ऊंची संस्कृति की वह घोषणा करता है ? मेरा दावा है कि संसार की कोई और संस्कृति इतना ऊंचा आदर्श उपस्थित नहीं कर सकती । विवाह के समय कन्या अग्नि साक्षी बना कर कहती है —'आज मैं इस नवयुवक को पति के रूप में स्वीकार करती हूं, जिससे पति लोक को प्राप्त कर सकूं' नवयुयक एक और मंत्र को पढ़ कर कहता है—" मैं इस देवी को पत्नी के रूप में ग्रहण करता हूँ जिससे कि ब्रह्मलोक में पहुँच सकूं' एक मंत्र में पतिलोक का वर्णन है और दूसरे मंत्र में ब्रह्मलोक का वास्तव में दोनों का अभिप्राय एक ही है पतिलोक है पतियों का पति ईश्वर और ब्रह्म लोक है परमात्मा,

जिससे बड़ा और कुछ नहीं । पति और पत्नी यदि

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं तो हमारी संस्कृति तथा हमारे धर्म के अनुसार । केवल इसीलिये कि अन्त में ईश्वर को प्राप्त कर सकें। गृहस्थाश्रम ईश्वर को पाने का उतना ही आवश्यक साधन हैं कि जितना ब्रह्मचर्य तथा सन्यास आश्रम । वास्तविकता यह है कि जो मनुष्य अपना लोक सुधार नहीं सका। वह परलोक भी सुधार नहीं सकता । धर्म यह है कि पहले लोक का सुधार करो और फिर परलोक का। जिसका गृहस्थ सुखी नहीं उसको संन्यासी बन कर भी सुख नहीं मिल सकता।

ऋषिकेश के आगे स्वामी रामतीर्थ जी का 'राम आश्रम' है। वह बहुत रम्य स्थान है। एक दिन मैं उसके पास से जा रहा था। तो देखा कि राम आश्रम के बरामदे में एक साधू बैठा रो रहा है मेरा मन है हँसोड़। लोगों का रोना मुझे पसन्द नहीं, मुझे अच्छा नहीं लगता, मैं उसके पास गया इस विचार से कि उन्हें हँसा कर उनका दुःख दूर करूँ। जाकर पूछा—"बाबा! क्यों रो रहे हो ? कोई कष्ट है क्या ? कही पीड़ा होती है ! सिर दुखता है ! साधू ने मेरी ओर देखा, आर्त स्वर में बोला—"नहीं कुछ नहीं' मैंनेकहा—"फिर हुआ क्या ? रोते क्यों हो साधु ने और भी उच्च स्वर से रोते हुए कहा—'पत्नी याद आ रही है ।! मैंने जोर से हँसते हुए कहा—'अरे' यह बात है, तो साधु क्यों बने ? किसी वैद्य डाक्टर या हकीम ने तुम्हें कहा था?' साधु बोला —'नहीं, यह बात नहीं। एक दिन पत्नी से मेरी लड़ाई हो गई! मुझे क्रोध आ गया, मैं सन्यासी हो गया, किंतु अब–'

मैं हँसते २ लोट-पोट हो गया, किन्तु हँसने की बात तो नहीं समझने की बात है। संन्यास आश्रम अच्छा है, परन्तु अपने समय पर। संन्यास सुखी हो, इसके लिये पहले गृहस्थ को सुखी बनाना चाहिये

एक थे महात्मा । कितने ही भक्त उनके पास आते थे । एक भक्त बहुत से मेवे, मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थ लेकर उनके पास आया । सब को लेकर एक ओर बैठ गया । महात्मा देर तक उनसे बात करते रहे । फल और मिठाई की ओर उन्होंने देखा भी नहीं । उनके विषय में बात भी नहीं की । भक्त पर्याप्त समय तक बैठे रहे और फिर उठकर चले आये । कमरे से बाहर आकर उन्होंने कहा—'कितना घमण्डी व्यक्ति है ? वस्तुओं की ओर देखा भी नहीं, मैं इतने पैसे व्यय करके लाया, परन्तु उनके विषय में बात तक न की । महात्मा के कान थे पतले, उन्होंने सुन लिया । दूसरे दिन वही भक्त आया । वैसे ही मिठाई तथा फल लाकर उसने महात्मा के सामने रख दिये । महात्मा ने मिठाइयों को देखते ही उनसे बातें प्रारम्भ कर दीं रसगुल्लों से, गुलाब जामनों से, कलाकन्द से, लड्डुओं से, बर्फी से, केलों-सन्तरों और सेवों से वे बातें करते रहे तथा उनकी प्रशंसा करते रहे । भक्त उनका मुंह देखता रहा । उससे उन्होंने बात भी नहीं की । इसकी ओर देखा भी नहीं । पर्याप्त समय जब व्यतीत होगया, तो भक्त तंग आकर कमरे से बाहर गया । बाहर आकर बोला—'कितना अभिमानी व्यक्ति है इतनी देर से मैं बैठा हूँ । इतनी देर से आया हूं । मुझ से बात तक नहीं ?' महात्मा ने यह बात भी सुन ली । पुकार के बोले 'ऐ भक्त ! भीतर आओ ।' भक्त के आने पर बोले—'देखो कल मैंने तुमसे बात की, फल और मिठाइयों से नहीं । तब तुम ने उपालम्भ दिया । आज मैंने फलों और मिठाइयों से बात की तुमसे नहीं । तब भी तुमने उपालम्भ दिया । वास्तव में तुम चाहते क्या हो ?'

भक्त ने क्या उत्तर दिया, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं

किन्तु उन महात्मा की भांति कितने ही पुरुष करते हैं । या तो

वे लोक ही लोक की चिन्ता करते हैं या परलोक ही परलोक की। या तो भक्त को भूलकर मिठाइयों से बातें करते रहते हैं, या मिठाइयों को भूलकर भक्त से। दोनों ही अवस्थाओं में भक्त उपालम्भ देता है। यह संसार मिठाई और फल है। परमात्मा वह भक्त है जिसने इस फल और मिठाई को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। दोनों का ध्यान रखना चाहिये, दोनों में से किसी को भी भुलाना धर्म नहीं, त्यागना धर्म नहीं।

कुछ मनुष्य कह सकते हैं। यह तो अत्यन्त कठिन है। ईश्वर और संसार दोनों को साथ-साथ कैसे रक्खा जा सकता है? एक को भूले बिना दूसरे को अपनाया कैसे जा सकता है? किन्तु भाई सुनो तो। कठिन कुछ नहीं। वेद भगवान ने इसका मार्ग भी बताया है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में भगवान् अपनी अमृत वाणी के द्वारा कहते हैं 'त्याग से भोग कर,।

अर्थात् भोग कर इस संसार को, प्रयोग में ला, धन संचय कर, शिशुओं का पालन कर, मकान बना, व्यापार चला, राज्य प्राप्त कर, शक्ति बढ़ा, सम्मान के लिए संघर्ष कर, सब को ग्रहण कर, किन्तु त्याग की भावना से। कारावासी कारागार में जाता है। वह कारावास के कपड़े और बर्तन प्रयोग करता है, इन्हें स्वच्छ और सुथरा रखता है, सम्भालता है, प्रयत्न करता है कि कोई चुराकर न ले जाये, किन्तु जब कारावास से मुक्त होता है, तब क्या वह अपने कम्बल को, अपने बर्तनों को, अपनी कोठरी को लिपट लिपट कर रुदन करता है? इन पदार्थों को चिमटता है? नहीं, क्योंकि वह कभी उन्हें अपना नहीं समझता। यह है त्याग से भोग करने का अभिप्राय।

धन संचय अवश्य करो, भवन निर्माण करो, सन्तान की रक्षा करो अपना स्वास्थ्य सुधारो, शक्ति और सम्मान प्राप्त

करो, किन्तु जब विधवायें पुकार उठें, जब दुखी जन चिल्ला उठें, जब अनाथों के अश्रु पात हों, जब देश पर, धर्म और जाति पर आपत्ति आ जाये, तब वस्तुओं को तुच्छ समझ कर त्याग कर दो। यह है त्याग से भोग करने का अभिप्राय।

और त्याग से भोग करने की यह मनोवृत्ति पैदा कैसे होती है? इसका उपाय क्या है? उपाय हैं दो—एक गायत्री मन्त्र दूसरे यज्ञ। गायत्री मन्त्र की बात अभी ठहर कर बताऊँगा। पहले यज्ञ की बात सुनो। शतपिथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य से छः प्रश्न पूछे गये। इनका उत्तर देते हुए उन्होंने बताया कि यज्ञ से क्या लाभ है? कुछ मनुष्य कहेंगे कि आनन्द स्वामी यह तू क्या यज्ञ और हवन की बात करता है। घी आगे ही मँहगा है, खाने को मिलता नहीं, तो इसे अग्नि में आहुति देकर व्यर्थ नष्ट कर देने की बात कहता है। किन्तु सुनो मेरे भाई संसार में कोई वस्तु विनाश को प्राप्त नही होती। यह विज्ञान का सिद्धाँत है और फिर आग में डाल देने से नष्ट होने के स्थान में इसकी शक्ति सहस्र गुणा बढ़ जाती। सामने यह माईक्रोफोन पड़ा है। इसमें क्या है जो ध्वनि को तीव्र कर देता है। विद्युत! किन्तु विद्युत क्या है? आग। इस आग में पड़ कर मेरा स्वर कितना तीव्र हो जाता है विद्युत या आग जितनी अधिक होगी, स्वर उतना ही तीव्र होगा। यह विज्ञान का सिद्धाँत है। यह सिद्धाँत यदि समझ में न आये तो एक लाल मिर्च को लीजिए। दिल्ली में लोग मिर्च बहुत खाते हैं। मिर्च के बिना इन्हें खाना अच्छा नहीं लगता।

(सुनने वाले मिर्चों की बात सुनकर हंस उठे। स्वामी जी ने पास बैठी एक छोटी सी बच्ची को कहा—'क्यों विजय बेटी तू मिर्च नहीं खाती ना।' विजय ने कहा—'जी नहीं।')

एक लाल मिर्च को एक पुरुष खाये तो सी सीं करने लगता है, किन्तु स्मरण रक्खो कि केवल एक पुरुष सी सी करता है। उसी लाल मिर्च को तनिक आग में डालकर देखिए तो क्या होता है। कितने लोग यहाँ बैठे हैं सब छीं छीं करने लगेंगे। सब की आँखो से अश्रु-पात होने लगेंगे। इस प्रकार आग में डालने से प्रत्येक वस्तु की शक्ति बढ़ जाती है। इस दृष्टिकोण से यज्ञ का प्रथम लाभ है इस लोक में। एक छटाँक घी जब आग में पड़ता है तब एक सहस्र गुणा हो जाता है, नष्ट नहीं होता। वह मनुष्यों के पास पहुंचता है, देवताओं के पास पहुँचता है। देवता,सूर्य, वायु, मेघ पृथ्वी, आकाश इन्हें जब भोजन मिलता है तब ये बलवान होकर कार्य करते हैं। आप कहेंगे कि देवताओं को बलवान बनाने से हमें क्या मिलता है, तो सुनिए ! हमारे देश में पृथ्वी का क्षेत्रफल है ७७ करोड़ ३० लाख एकड़। इसमें पच्चीस करोड़ एकड़ भूमि पर कृषि होती है, शेष पर नहीं। और जिस २५ करोड़ एकड़ भूमि पर कृषि होती है, इस में ४ करोड़ १० लाख एकड़ भूमि पर नहरों से पानी दिया जाता है। शेष समस्त भू-क्षेत्र भगवान के भरोसे पर है। बर्षा हो तो, इस में अन्न होता है, न हो तो नहीं होता। समय पर वर्षा हो यह केवल हमारे ही देश की नहीं प्रत्येक देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

यज्ञ का विज्ञान वह विज्ञान है जिसकी सहायता से अपनी इच्छानुकूल वर्षा कराई जा सकती है। वर्षा न हो तो यज्ञ करो वर्षा अवश्य होगी। यज्ञ से बेटा उत्पन्न हो सकता है। जिसके अधिक सन्तान होती हो उसकी सन्तान का होना भी रुक सकता है। इसीलिए यज्ञ को सर्वोत्कृष्ट कर्म कहा गया है।

यज्ञ से बढ़कर और कोई दान नहीं। क्यों कि यज्ञ का

भाग केवल मित्रों और सम्बन्धियों को ही नहीं प्रत्युत्त शत्रुओं को भी प्राप्त होता है। इस से बड़ा दान और क्या हो सकता है? अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है जिस देवता के पास भी आप अपनी भेंट पहुँचाना चाहते हैं, अग्नि में डाल दीजिए वह भेंट उस देवता के पास पहुँच जायेगी। ऋग्वेद के प्रथम ही मन्त्र में अग्नि को देवताओं को बुलाने वाला पुरोहित और दूत कहा है। सूर्य देवता, चन्द्र देवता वायु देवता, जल देवता, मेघ देवता सबका पुरोहित सबको बुलाने वाला यही अग्नि है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं। वर्षा समय पर होती हैं सूर्य ठीक प्रकार से चमकता है पृथ्वी अच्छे अन्न को उत्पन्न करती हैं। इससे निकलने वाले अन्न में अधिक शक्ति होती है। यह है यज्ञ का वह लाभ जिसका सम्बन्ध इस लोक से— इस संसार से है।

किन्तु यह तो केवल एक लाभ है। दूसरे लाभ का सम्बन्ध परलोक से है। महर्षि याज्ञवलक्य ने किये गये प्रश्न का उत्तर देते बन जाते हैं। वह दो भरागों में विभक्त हो जाती है। एक रूप हुए कहा—"यज्ञ में जब आहुति दी जाती हैं, तो उसके दो वायु, जल, आकाश और पृथ्वी को शुद्ध करता है, इन्हें शक्ति रूप प्रदान करता है, मनुष्य के लिये लाभप्रद बना देता है। दूसरा भाग मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके वहाँ बैठ जाता हैं, जहाँ सूक्ष्म शरीर का निवास है और फिर जब जीवन का अन्त होता है, जब सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ आत्मा इस शरीर से बाहर निकलता है, तो ये आहुतियाँ इस सूक्ष्म शरीर को लपेट कर इसे ऊपर उठा कर उस लोक में ले जाती हैं जिसकी इच्छा से यह डाली गई थी। ईच्छा जितनी प्रबल हो, श्रद्धा जितनी सशक्त हो विश्वास जितना दृढ़ हों उतना ही आहुतियों का रूप शक्ति शाली होता है।" इसलिये हमारे

पूर्वजों की आज्ञा है—"प्रातः-सायं दोनों काल यज्ञ करो। संन्यास आश्रम के अतिरिक्त प्रत्येक आश्रम में करो, जिससे कि आहुतियों का वह दूसरा रूप अधिक से अधिक मात्रा में एकत्रित हो सके।"

एक वेद मन्त्र सुनिये। यज्ञ करने वाला यज्ञ को सम्बोधित करके कहता है—हे यज्ञ ! जो आहुतियाँ मैं तेरे मुख में देता हूं उन्हें स्वीकार कर। यज्ञ के देवता तुम इन्हें स्वीकार करते हो और इसके बदले सुमति (सुबोध) देते हो। और यह सुमति सीधी हमारे पास आकर निर्धन को वैभवशाली कर देती है। करने से तात्पर्य केवल धन प्रदान करना ही नहीं, किन्तु बुद्धि, बल, शासन, स्वास्थ्य, कीर्ति सब कुछ प्रदान करना है। यह है यज्ञ का वह लाभ, जिसका सम्बन्ध परलोक से है।

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि यज्ञ से तीनों छन्दों में कल्याण होता है। ये तीन छन्द हैं—जगती, त्रिष्टुप् और गायत्री। जगती छन्द या जगती लोक वे हैं जिनके सम्बन्ध में हमें कोई बोध नहीं। बहुत ऊपर इन नक्षत्रों से परे इन्हें स्वर्गलोक भी कहते हैं। त्रिष्टुप् छन्द त्रिष्टुप् लोक वह है, जिसे हम तारागण के रूप में देखते हैं। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि इन्हें भूमिलोक भी कहा जाता है और गायत्री छन्द या गायत्री लोक है। यह पृथ्वी इसके पर्वत, नदियाँ, मैदान, क्षेत्र, जंगल, उद्यान, फल, फूल इत्यादि इसे भूलोक भी कहा जाता है।

वेद कहता है जो लोग यज्ञ करते हैं। इनसे वैर करने वाला न तो कोई भूलोक में रहता है और न भुवः लोक में और न स्वः लोक में, न पृथ्वी पर, न नक्षत्रगण में, न इनसे ऊपर और न परे। वेद के शब्द हैं—"हे यज्ञ ! जो हम से वैर करते हैं और उनसे हम वैर करते हैं, तू उन सबका नाश कर देता है।" यह

अवस्था जब उत्पन्न हो जाये, जब कोई भी शत्रु न रहे, शत्रुता न रहे, तब यह आत्मा इस महान् प्रकाश में प्रवेश करता है जिसमें केवल आनन्द ही आनन्द है जिसे भगवान् कहते हैं।

यह है यज्ञ का लाभ—लोक और परलोक दोनों ही इससे सुधरते हैं तो सोने पर सुहागा हो जाता है।

गायत्री का अर्थ है वह मन्त्र जो गाने वाले का उद्धार करता है। प्रेम से श्रद्धा से जो लोग गायत्री मन्त्र को गाते हैं, इसका जाप करते हैं वे पार अवश्य हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु अब समय हो गया है पूरा। गायत्री की बात अब आगामी व्याख्यान में कहूँगा।

द्वितीय दिवस

प्यारी माताओ सज्जनो ? पिछली बार मैंने बताया कि मानव शरीर से अधिक श्रेष्ठ कोई शरीर नहीं हमारे ग्रंथों ने इसे देवपुरी, ऋषिपुरी ब्रह्मपुरी कहा है। ऐसा रथ कहा हैं कि इसको जिस पर बैठ कर आत्मा अमृत और मोक्ष को प्राप्त करता है। आधुनिक विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि इसमेंतीन आने की गन्धक है, साढ़े तीन की अमुक वस्तु है, एक रुपये की अमुक वस्तु मिला-मिलाकर इनके विचार से इसका मूल्य तीन या चार रुपये होता है। आजकल वस्तुयें महँगी हो गई। है इसलिये पांच या छः रुपये समझ लीजिए। वैज्ञानिक कहते हैं समझ लो कि इससे अधिक शहीर का मूल्य है नहीं। वे भी कहते हैं कि वह शरीर एक तुच्छ कीड़े के शरीर से बढ़ते-बढ़ते मानव का शरीर बन गया है। पहले मछली बना, फिर छिपकली, तब गिलहरी' फिर बन्दर, इस प्रकार कई लाख वर्षों में मनुष्य बन गया। किन्तु हम तो यह बात नहीं मानते, केवल शास्त्रों में ऐसा लिखा है इसलिए यह बात नहीं कहते, बुद्धिसे तथा तर्क से कहते हैं कि संसार में प्रत्येक वस्तु धीरे धीरे बुढ़ापे, निर्बलता और समाप्ति की ओर जा रही है। यह जीवन का सिद्धान्त है कोई भी पदार्थ पहले उत्पन्न होता है, तब युवा होता है फिर बूढ़ा होने लगता है इसकी शक्ति नष्ट होने लगती है अन्त में इसकी समाप्ति हो जाती है। वैज्ञानिक स्वयं स्वीकार करते हैं कि सूर्य में वह ताप नहीं जो आज से कुछ करोड़ वर्ष पूर्व था, वो स्वयं कहते हैं कि समय की गति ने सूर्य में बडे-बड़े गडढे उत्पन्न कर दिये ! इतने बड़े-बड़े गड्ढे कि एक एक गड्ढे में कई कई पृथ्वियां समा जावें। वे

गड्ढे पहले नही थे । अब बड़े हो रहे हैं । सूर्य धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है । संसार में प्रत्येक पदार्थ की यही दशा है । बिजलीकी टार्च में नई नई वैट्रियाँ डाली तो पहले दिन जैसा प्रकाश होता है वैसा दूसरे दिन नहीं होगा, दूसरे दिन का तीसरे दिन नहीं होगा । धीरे-धीरे वैट्री समाप्त हो जायेगी । प्रकाश का अन्त हो जायेगा, संसार में प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है, बढ़ती है, समाप्त हो जाती है । उत्पन्न होती है अपने वास्तविक रूप में, बढ़ती है इसी रूप में, समाप्त होती है उसी में किन्तु वैज्ञानिक हमें बतलाना चाहते है कि शेष सभी बातों के सम्बन्ध में यह बात ठीक है केवल मानवीय शरीर के सम्बन्ध ठीक नहीं । क्यों ठीक नही ? इसका उत्तर वे नहीं देते । आज भी हम देखते हैं कि शिशु उत्पन्न होता है, युवा होता है बड़ा होता है, तब दान्त गिर जाते हैं ? आँखे देखना बन्द कर देती हैं, कान सुनने से मनाई कर देते हैं, एक-एक अंग निःशक्त होने लगता है । टागें चलती नही । कमर दुहरी हो जाती है अन्त में लड़खड़ाता हुआ वृद्ध मनुष्य शक्ति से रहित होकर मृत्यु का ग्रास बन जाता है । संसार में हम जीवन का यह सिद्धान्त देखते हैं । मनुष्य के शरीर में देखते हैं । फिर यह कैसे मान लें कि मनुष्य पहले मनुष्य नही था, बन्दर था ।

गल्त है विज्ञान का यह सिद्धान्त कि मनुष्य बन्दर से मनुष्य बना । यह शरीर जिसे ऋषियों ने प्रेय कहा, जिसे देवताओं ने अपनी भूमि बनाया, जिसे भगवान ने ब्रह्मपुरी कहा, पहले भी ऐसा ही था । पहले भी यह सब शरीरों से श्रेष्ठ था, आज भी श्रेष्ठ है । किन्तु यह श्रेष्ठ है इसलिये कि इसमें आत्मा रहता है । आत्मा को भुला दो तो फिर वह कुछ भी नहीं । कल आपको पता लगे कि आपके नगर या ग्राम में भारत के प्रधान मंत्री या राष्ट्रपति आने वाले है तो आप क्या करेंगे ? सड़के ठीक

करायेंगे नालियां और मोहल्ले साफ करायेंगे, जहाँ उन्हें ठहराना है वह मकान साफ करायेंगे। बहुत यत्न से उसे सजायेंगे प्रत्येक कमरे को, प्रत्येक वस्तु को जोकि इस मकान के अन्दर है। आप अधिक से अधिक स्वच्छ बनाने का यत्न करेंगे। राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री आयेंगे तो उनका स्वागत करके, प्रेम से, प्यार से इन मकान में लायेंगें। किन्तु सफाई और तैयारी करने के बाद यदि आप राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री को पूछें नहीं, उनसे बात नहीं करें उनको खाने को न दे, केवल मकान को ही सजाते रहें, तो इस सजावट का और मकान का क्या उपयोग ? मकान और सजावट कामूल्य (उपयोग) केवल राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री के कारण से है शरीर का मूल्य केवल आत्मा के कारण से है। राष्ट्रपति चले जायें तो उसकी सजावट व्यर्थ है। आत्मा चली जाय तो यह शरीर केवल मिट्टी का ढेर है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा को शरीर मिला किस कारण से ? दूसरे भी तो शरीर हैं उनको हम श्रेष्ट और बड़ा क्यों नहीं कहते ? क्यों यह मिला शरीर ? क्या अभिप्राय था नौ द्वार और आठ चक्रों की इस ब्रह्मपुरी में आने का ? हमारे ऋषियों और महात्माओं ने इसका उत्तर दिया आत्मा को यह शरीर भोग और मोक्ष के लिये प्राप्त हुआ है। इसलिये मिला है कि आत्मा इस सुन्दर संसार का उपभोग कर सके जिसका निर्माण इसके लिये ही हुआ है, और उपभोग के साथ साथ अपने अन्तिम ध्येय प्रभु मिलने को प्राप्त कर सकें यह संसार जिसे हम अपने चारों ओर देखते हैं' यह फल और फूल, वायु, यह जल, य बरसते हुए मेघ लहलहाते खेत, झूमते हुए वृक्ष, यह सब मनुष्य के लिये है मनुष्य प्राणी इनका उपभोग कर सकें' इनका उपयोग कर सके इसलिए इनको पैदा किया है। किन्तु यह भोग त्याग के साथ होना चाहिए। पिछली बार मैंने बतलाया था कि त्याग के साथ भोग

करने का अभिप्राय क्या है ? आज उसको दोहराऊंगा नहीं किन्तु यह शरीर केवल भोग के लिये नहीं, धर्म के लिए भी मिला' है। तब प्रश्न होता है कि धर्म क्या है ?

हमारे ऋषियों और महात्माओं ने उत्तर देते हुए कहा है-" धर्म वह है जिससे लोक और परलोक दोनों का सुधार हो। "परन्तु लोक और परलोक दोनों का सुधार एक साथ कैसे हो सकता है यह बात बहुत से मनुष्यों की समझ में नहीं आती। इस पर विचार करना चाहिए। समझना चाहिए कि कोई भी ऐसा काम जिससे लोक सुधरे और परलोक नहीं, वह धर्म नहीं। इसी प्रकार कोई भीं ऐसा काम जिससे परलोकसुधरे, लोक नहीं ,वह भी धर्म नही और ऐसा काम जिससे लोक और पर लोक दोनों सुधरते हैं यज्ञ है। यज्ञ से क्या-क्या लाभ होते हैं ? ये मैंने पिछली बार बतलाया। यज्ञ से परलोक किस प्रकार सुधरता है ? परलोक के विषय में धर्म किस प्रकार पूरा होता है ? यह भी बतलाया महा-राज मनु ने कहा है "इस संसार से परे दूसरे लोक हैं न बेटा साथ जाता है और न बेटी,न पत्नी, न मित्र न कोई भी सम्बंधी ही वहां साथ जाता है वहां केवल धर्म ही मनुष्य के साथ ठहरता है और यह धर्म यज्ञ की इन आहुतियों में लिपटा रहता है, जो हम श्रद्धा से तथा प्यार से यज्ञकी अग्नि में डालते हैं।

यह यज्ञ का लाभ इससे लोक सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। कुछ लोग कहते हैं कि लाभ की बात तो हमने सुनली किन्तु यदि यज्ञ न करें तो इससे हानि क्या है ?

सुनो मेरे भाई ? सुनो मेरी बच्ची ? यज्ञ न करने की हानि तुम्हें बताता हूं जब तक इस संसार में यज्ञ होते रहे, तब तक लोग सुखी थे। वर्षा समय पर होती थी सूर्य ठीक प्रकार से

चमकता था। खेतों में अनाज समय पर होता था। इसमें

पवित्रता होती थी। रोग नहीं होते थे। क्यों नहीं होते थे ? इसलिये कि यज्ञ को धर्म माना जाता था। कोई भी मनुष्य यज्ञ के बिना न था।

भारत के प्राचीन ऋषियों और महात्माओं ने योग की ध्यान अवस्था में जाकर देखा कि सुख तब होता है, जब आकाशी संसार (द्यु लोक) और मृत्यु लोक तथा मानवीय शरीर वाले संसार तीनों में सामञ्जस्य हो, तीनों में एक जैसी बात हो रही हो। आकाश में जो कुछ है वह इस संसार में है। संसार में जो कुछ है वह इस शरीर में है। शरीर तब ठीक रहता है जब संसार ठीक रहता है। संसार तब ठीक रहता है जब आकाश ठीक हो। तब उन्होंने निर्णय किया कि मनुष्य यदि सुखी रहना चाहता है' यदि वह चाहता है कि पृथवी जल, वायु, सूर्य, चन्द्र और तारे इसके लिये शक्तिदाता हों' इसे ऊपर और आगे ले जाने वाले हों तो इसे यज्ञ करना होगा। प्रतिदिन करना होगा। यज्ञ से इन तीनों संसारों में आकाश,पृथ्वी और शरीर में सामञ्जस्य होता है यज्ञ से समय पर वृष्टि होती है, पृथ्वी उपजाऊ बनती है, अन्न शक्ति शाली होता है।

किन्तु हमारे देश में दासता के कारण एक विचित्र प्रकार की हीन भावना सी उत्पन्न हो गई है। हमारे ग्रन्थों ने जब कहा कि मनुष्य अपनी इच्छा से वर्षा कर सकता है, तो हमारे देश के लोगों ने माना नहीं। यूरोप और अमरीका वाले किसी बात को प्रमाणित न करें तब तक हम लोग अपने ग्रन्थों में लिखी किसी बात को स्वीकार करने को तत्पर नहीं। वर्षा के संबन्ध में भी हमें सन्देह था कि वह मनुष्य की इच्छा से नहीं हो सकती। किन्तु आज से कुछ वर्ष पूर्व अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने जब घोषणा की कि उसने अपनी इच्छा से वर्षा कराने का यन्त्र तैयार कर लिया है। तब हमने स्वीकार किया कि हां मनुष्य की इच्छा

से भी वर्षा हो सकती है। मैंने इस यन्त्र के चित्र को देखा तो विस्मय में पड़ गया। यह यन्त्र आपके हवन कुण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अत्यन्त विशाल हवन कुण्ड सा है वह' जिसमें लगभग वही जड़ी बूटियाँ जलाई जाती हैं जिन्हें हम सामग्री के रूप में हवन यज्ञ में आहुति देते हैं। उनसे धुवाँ उठकर आकाश में जाता है तो आकाश में मेघ एकत्रित होने लगते हैं तब वायुयान उन मेघों के ऊपर जाकर शुष्क हिम डालते हैं। मेघ शीतल हो जाते हैं और वर्षा होने लगती है। अमरीका की इस वर्षा विधि और हमारे देश भारत की वर्षा विधि में यदि कोई अन्तर है तो यह कि हम मेघों को वर्षा के रूप में परिवर्तित करने के निमित्त वायुयानों और शुष्क हिम का प्रयोग नहीं करते। हम उस यज्ञ का आश्रय ग्रहण करते हैं जिससे बादल स्वयं ही वर्षा करने लगते हैं।

सो मेरे भाई ? यह है यज्ञ से लाभ और उसे न करने से हानि है वह जिसे हम देखते हैं। कभी वर्षा उपयुक्त अवसर पर नहीं होती कभी होती है तो इतनी अधिक कि बाढ़ का विकराल रूप धारण कर लेती है। लहलहाते क्षेत्र विनष्ट हो जाते हैं घरों का विध्वंस हो जाता है। अन्न में वह शक्ति नहीं जो पूर्वकाल में थी औषधियों में रोग निवारण की शक्ति नहीं। वायु में वह अमृत नहीं।

वेद भगवान ने कहा था' यज्ञ से वह सुबुद्धि प्राप्त होती है जो मनुष्य को स्वास्थ, बल, धन, राज्य, परिवार सम्मान, अवस्था और शुभ कीर्ति में सुसम्पन्न कर देती है।' प्रायः सुबुद्धि अथवा सुमति का अर्थ ज्ञान या बुद्धि होता है। आधुनिक तत्व और विज्ञानवेता बुद्धि से आगे नहीं जा सकते। बुद्धि को वह आत्मिक शक्ति समझते हैं, आत्मा का तत्व समझते हैं। उन्हें ज्ञात नहीं कि बुद्धि आत्मा का नहीं प्रत्युत इस शरीर का और प्रकृति का अन्श

है। प्रकृत्ति का सर्व प्रथम रूप जो प्रकृति के बिगड़ने के उपरान्त निमित हुआ बुद्धि था। भगवान् ने जब सृष्टि की रचना की तब प्रकृति सोई हुई थ, उसमें केवल एक गुण था, वह थी बुद्धि। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। भगवान ने अपनी शक्ति से उसको जागृत किया। आज्ञा दी "उठो" जागो। मुझे तुमसे सृष्टि का निर्माण करना है।" तब भगवान की माया से प्रकृति में महातत्व उत्पन्न हुआ उस महातत्व को समष्टि बुद्धि या सामूहिक बुद्धि भी कहते हैं। यही प्रत्येक मानवीय शरीर में बुद्धि बन कर प्रगट होती है बुद्धि का अर्थ सुमति से नही। सुमति या सुबुद्धि भगवान की वह शक्ति है जो यज्ञ के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होती है जिसे प्राप्त करने के पश्चात् यह जीता जागता आत्मा प्रगति से उस परमानन्द की ओर अग्रसर होने लगता है जो इसका लक्ष्य तथा ध्येय है।

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय में एक मन्त्र आता है। महर्षि दयानन्द ने इसका जो अर्थ किया वह आपको सुनाता हूँ। अर्थ है—"कौन यज्ञकरने वाला इस यज्ञ को त्यागता है, अर्थात् कोई नहीं त्यागता।" जो समझता है और जानता है वह यज्ञ कभी नहीं त्यागता। यज्ञ के कभी विमुख नहीं होता। जो यज्ञ को त्याग देता है उसे ईश्वर भी त्याग देता है। क्यों जी! इससे बड़ी भी कोई हानि तीन लोक में हो सकती ह? जिसे ईश्वर ही छोड़ दे उसके पास शेष रह ही क्या जायगा? जिसका ईश्वर ही पतन कर दे उसका रक्षा करने वाला भला कौन हो सकता है? कहीं उसको सुख नही मिल सकता। सुख और शान्ति उससे कोसों दूर भागेगी क्योंकि सुख और शांति तो ईश्वर में व्याप्त है या समाविष्ट है। ईश्वर ने छोड़ दिया जिसे सुख और शान्ति ने छोड़ दिया उसको। महर्षि अर्थ करते हुए लिखते हैं "यज्ञ मेरे वास्ते। यज्ञ की सामग्री को किस लिए अग्नि में

आहुति देता है। सबको सुख देने के लिए, सबको पुष्टि देने के लिए, आयु के लिए, धन के लिये, राज्य के लिये, सन्तान के लिए स्वास्थ्य के लिये, कीर्ति के लिये। जो वस्तु यज्ञ से शुद्ध किये बिना ही प्रयोग में लाई जाती है वह राक्षसी बन जाती है। उसको खाने से और प्रयोग में लाने से मनुष्य भी राक्षस बन जाता है तब उसका पतन होता है। और वह निरन्तर अवनत्ति के गर्त में गिरता जाता है।

यह है यज्ञ की उत्कृष्टता। वेद भगवान ने उसे इतना ऊंचा स्थान दिया है जितना अन्य किसी वस्तु अथवा कार्य को नही दिया। महर्षि दयानन्द से पूर्व या तों यज्ञ होते नहीं थे या हिंसा के आधार पर होते थे। यज्ञ का अभिप्राय है प्रत्येक प्राणी को लाभ और सुख देना। उसमें हिंसाके लिए स्थान'कहां है ? किसी जीव को मृत्यु के घाट उतार देना उसे लाभ पहुँचाना नही है यज्ञ करना धर्म है। यज्ञ के साथ हिंसा करना धर्म नहीं है।

किन्तु जैसा कि मैंने पिछली बार बताया था। यज्ञ के अतिरिक्त एक और कर्म भी है जिससे लोक और परलोक सुधरते हैं लोक और परलोक के सम्बन्ध में मनुष्य का धर्म पूरा होता है। यह है गायत्री मन्त्र। पिछली बार मैंने कहा था, गायत्री का शाब्दिक अर्थ है वह मन्त्र जिसको गाने से, जिसका जाप करने से मनुष्य का उद्धार हो जाता है। आज महाभारत के अनुशासन पर्व की एक कहानी सुनिए ! अनुशासन पर्व के एक सो पचासवें अध्याय में महाराजा युधिष्टिर ने पितामह भीष्म से कितने ही प्रश्न किए। उनमें से एक प्रश्न मैं आपको पढ़कर सुनाता हूँ।

युधिष्टिर ने पूछा, "हे महात्मन ! हे पितामह ! हे महा-विद्वान ' कहिए वह मन्त्र कौन-सा है जिसको सदैव जपने से धर्म को भारी लाभ होता है ? जिसको चलते-फिरते उठते-बैठते

किसी स्थान पर जाते समय किसी स्थान से आते समय, किसी

कार्य को प्रारम्भ करते समय, और किसी कार्य को समाप्त करते, प्रत्येक समय पढ़ा जा सकता है ? जिसके जाप से आनन्द, शान्ति सुख रक्षा मिलती है । धन सम्पति और राज्य मिलता है । जिस के जाप करने से भय का नाश होता है । जो वेद के अनुकूल है ।"

यह प्रश्न पूछा महाराज युधिष्ठिर ने । युधिष्ठिर स्वयं भी विद्वान थे । महाभारत ने उन्हें धर्म का बेटा कहा था, किन्तु भीष्म उससे भी अधिक विद्वान् थे। युधिष्ठिर के प्रश्न को सुन कर उन्होंने कहा —'युधिष्ठिर ! जो मनुष्य गायत्री का जाप करते हैं, उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, विमान सब कुछ मिलता है । उन्हे देश और विदेश में यश प्राप्त होता है उनको राजदरबार में सम्मान प्राप्त होता है। गायत्री का जाप करने वाले को राजा, राक्षस शत्रु सर्प और तीक्ष्ण विष कोई भी हानि नहीं पहुंचा सकता । चारों वर्ण और चारों आश्रम उसका जाप करके सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं । जहां गायत्री का जाप होता है, वहाँ अग्नि कोई क्षति नहीं पहुँचा सकती है वहां से सर्प भाग जाते हैं । वहां शिशु नहीं मरते। वहाँ गऊओं की संतान में सदा वृद्धि होती रहती है । जाते समय, आते समय, कार्य को प्रारम्भ करते समय, समाप्त करते समय, प्रत्येक समय गायत्री का जाप किया जा सकता है ।, यह है गायत्री की महिमा। इतना बड़ा कोष तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत है। सुनो मेरी माता ! सुनो मेरे बच्चो ! इसके बाद भी लाभ न उठाओ तो दोष किसका ? किन्तु भीष्म ने इससे आगे भी कहा, 'हे युधिष्ठिर ! जो ऋषि लोग जाप करते हैं । उन जाप करने वालों का यह गायत्री परम जाप है । यह उन का गुप्त मन्त्र है। सदैव से ऋषि लोग इसका जाप करते रहे हैं। इसका गायन करते रहे हैं। सभी राजा लोग, सभी वीर और सभी विद्वान, चाहे वह सूर्यवंशी थे या चन्द्रवंशी, रघुवंशी थे या कौरव वंशी। इसी के जाप से यश, धन, शक्ति और आनंद को प्राप्त हुए हैं।

इतनी महिमा है इस मन्त्र की। वेद में इसको गुरु मन्त्र कहा गया है। चारों वेदों में लगभग बीस सहस्र मन्त्र हैं। उन में से इसी गायत्री को गुरुमन्त्र क्यों कहा गया ? क्यों, प्रत्येक वेद में प्रत्येक शास्त्र में, प्रत्येक ग्रन्थ में गायत्री को इतना सम्मान प्रदान किया गया ? यजुर्वेद में तो वारम्बार गायत्री की प्रशंसा आती है। ऋग्वेद और सामवेद में भी आती है। किन्तु अथर्ववेद में गायत्री की प्रशंसा करते हुए कमाल कर दिया गया है । उसका यह मन्त्र सुनिए ! (और स्वामी जी ने गाकर यह मन्त्र सुनाया। आंखे मूंदकर, मुख मण्डल को आकाश की ओर किया। जब गा रहे थे तो ऐसा लगता था, जैसे गायत्री माता उनके सम्मुख खड़ी है। वह देख रहें हैं और उसको देख कर कह रहे हैं ...।)

आह! कितना सुन्दर है यह मन्त्र। गायत्री इसका देवता है। मन्त्र के देवता का अभिप्राय है यह कि वह मन्त्र का स्वामी है। गायत्री का उल्लेख करते हुए भगवान् की अमृत वाणी से भक्त कहता है, "मैंने वेदमाता, वरदान को देने वाली गायत्री का जाप किया है। इसकी उपासना की है। इसकी गोद में बैठा हूँ। कैसी है वह मां प्रेरणा करने वाली, जो धर्म वाले हैं उन्हें पवित्र करने वाली और —"

मैंने आप से कहा था गायत्री लोक और परलोक दोनों का सुधार करने वाली है। उन सब पदार्थों को प्रदान करने वाली है जो इस लोक और परलोक में हमें चाहिए। क्या-क्या वे वस्तुएं हैं ? प्रत्येक वस्तु जो आप चाहते हैं उसका वर्णन इस मन्त्र में आयेगा।

वेद कहता है "गायत्री सर्व प्रथम आयु देती है"

प्रत्येक मनुष्य को अपनी आयु के सम्बन्ध में चिन्ता रहती है। जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, वहाँ यही सुनता हूं। स्त्रियों को चिन्ता है कि उनके पतियों की आयु दीर्घ हो। पति को चिन्ता है कि उस

की पत्नी कहीं उसको मार्ग में छोड़कर ही न चली जाये। माता पिता को चिन्ता है कि उनकी संतान की आयु उनसे अधिक हो प्रत्येक मनुष्य को सर्व प्रथम इच्छा आयु के सम्बन्ध में होती है और वेद कहता है—"गायत्री सर्व प्रथम आयु देती है।" किन्तु कैसी आयु प्रदान करती है गायत्री ? क्या क्षय के रोगी की आयु अधरंग के रोगी की आयु ? जिससे तंग आकर लोग मृत्यु की इच्छा करते हैं ? नहीं ऐसी आयु नहीं अपितु ऐसी आयु जिसमें 'प्राण' हों।

वेद कहता है 'आयु के साथ साथ गायत्रीं अपने जाप करने वाले को प्राण देती है, रोग और निर्बलता उसके पास नहीं आती। आये तो शीघ्र ही निवृत हो जाती हैं, किन्तु केवल आयु और स्वास्थ्य ही तो मनुष्य की इच्छा नहीं। वह संतान भी चाहता है, और वेद कहता है गायत्री सन्तान देती है पुत्र देती है

किन्तु क्यों जी ? सन्तान हो जावे अधिक। उन्हें खिलाने के लिये, पालने के लिये कुछ हो नहीं, तो फिर मनुष्य क्या करेगा ? गायत्री माता बहुत अच्छी है सन्तान देती है, हो गई सन्तान दो चार-आठ दस-पन्द्रह बीस। उनके खाने के लिए यदि है नहीं तो उनका क्या करें ? क्या अनाथालय में भेज दें ? नहीं, गायत्री का जाप करने वाले की संतान अनाथालयों में नहीं जाती। वेद कहता है" गायत्रीं अपने जाप करने वाले को पशु घोड़े, गाय, बैल, धन, अन्न भूमि-फल क्षेत्र सभी कुछ देती है।"

परन्तु देखो मेरी माताओं ! देखो मेरे बच्चों ? मनुष्य की इच्छा यह सब लेकर भी पूरी नहीं होती। आयु, प्राण, सन्तान, धन सम्पति, घोड़े, हाथी, मोटर कारें और वायुयान सब कुछ मिल जाये तो भी एक इच्छा उसके मन में रहती है, "कीर्ति की इच्छा" इस बात की इच्छा, कि उसका सम्मान हो। उसके यश का विस्तार हो।

और वेद कहता है कि गायत्रीअपने जाप करने वाले को सुयश देती है।

और फिर यही नहीं। वेद इससे आगे भी कहता है 'गायत्री' हमें ब्रह्मचर्य (मुख की कान्ति) को भी देती है, जिसे देखते ही प्रत्येक दर्शक झुक जाता है। गायत्री का जाप करने वाले के सामने कोई आंख नहीं उठा सकता।

ये सात सांसारिक पदार्थ हैं, जो कि गायत्री जाप से उपलब्ध होते हैं, किन्तु इन पदार्थों का सम्बन्ध तो इस लोक से है और गायत्री केवल इस लोक का नहीं परलोक का भी सुधार करती है वेद कहता है—'इन सब पदार्थों को देकर हे गायत्री माता तू मुझे ब्रह्मलोक में ले जाती है, तू मुझे मोक्ष दिला देती है।

अब बातइये, हो गया कि नही लोक और परलोक का कल्याण। यह कल्याण यज्ञ से भी होता है, गायत्री मंत्र से भी और यदि यज्ञ गायत्री मंत्र से हो तो समझिये कि सोने पर सुहागे का काम हो गया।

इन सब बातों को सुन कर आपके मन में आता होगा कि क्या ही अच्छा होता कि हम भी गायत्री का जाप करते, यदि हम अपनी आयु को नष्ट न करते, किन्तु घबराओ नहीं जितनी आयु शेष है उसी में गायत्री का जाप करो, उसी से कल्याण होगा। एक कहानी सुनाता हूं आपको पहले भी कई स्थानों पर सुना चुका हूँ। आज फिर सुनाता हूँ।

एक था राजा शायद भारत के दक्षिण में। एक दिन वह आखेट के लिये जंगल में गया। मार्ग भूल गया। देर हो गई भूख और प्यास से व्याकुल होने लगा। तभी देखा कि जंगल में एक लकड़हारा लकड़ियाँ काट रहा है बहुत से पेड़ कट चुके हैं थोड़े से बाकी हैं। उन्हीं में से एक पेड़ की शाखाओं को वह नीचे गिरा रहा है। राजा ने उसके पास जाकर कहा—"भाई ! मैं

भूखा हूं बहुत प्यास लगी है। तुम्हारे पास खाने को कुछ है क्या ?"लकड़हारे ने कहा—"है, आओ, बैठो। दूर इधर एक बावड़ी है। मैं वहा से पानी लाता हूँ। तुम यह रोटी खाओ और एक पोटली से निकाल कर एक मोटी सी रोटी उसने राजा के सामने रख दी। थोड़ा सा शाक भी रख दिया। राजा ने उसको खाया। लकड़हारे का लाया हुआ पानी पिया। शान्त हो कर कहा—"मैं अमुक स्थान का राजा हूँ। घर का मार्ग भूल गया हूँ लकड़हारे ने मार्ग बतला दिया, राजा ने कहा—कष्ट के समय तुम ने मेरी सहायता की। यदि तुम को भी कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे समीप आना। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।" लकड़हारे ने हाथ जोड़ कर प्रणाम कर दिया। राजा चले गये। कुछ दिन व्यतीत हो गए। धीरे-धीरे इस बन के सभी वृक्ष समाप्त हो गये जिसमें लकड़हारा लकड़ी काटकर कोयले बनाकर बेचता था। अब वह अपनी जीविका चलाये तो कैसे ? लाये तो कहा से ? बहुत दुःखी हो गया। दुखित चित्त से राजा के समीप पहुंचा। सेवकों ने राजा को सूचना दी कि एक लकड़हारा आपको मिलना चाहता है। राजा ने सोचा, स्मरण आया कि हाँ कि एक लकड़हारे को कभी सहायता देने का वचन दिया था। एक दिन उसने प्राण बचाये थे। बोला—"उसको अच्छे अच्छे कपड़े पहिनाकर मेरे समीप लाओ।" सेवकों ने लकड़हारे को स्नान कराया, नवीन वस्त्र पहनाये, राजा के सामने ले आये। राजा ने पूछा—"कहो भाई ! लकड़हारे ! क्या बात है ? उदास क्यों हो ?" लकड़हारे ने उत्तर दिया, 'महाराज जिस वन से मैं लकड़ियां काटता था समाप्त हो गया। अब जीविका का मेरे पास कोई साधन नहीं। आपकी शरण में आया हूँ कि कोई और वन मिल जाये तो मैं भूखा मरने से बच जाऊं।' राजा ने कहा—"हो जायगा यह काम। तुम निश्चिन्त हो।

जाओ।" उसके चले जाने पर अपने मंत्रियों को बुलाकर परामर्श किया कि इस लकड़हारे को क्या दिया जाये ? परामर्श के पश्चात् निर्णय हुआ कि शहर के दक्षिण में राजा का चन्दन के वृक्षों का जो बन है वह लकड़हारे को दिया जाये।" जिससे सदा के लिए लकड़हारे की निर्धनता दूर हो जाये। पदाधिकारियों को बुलाया गया-चन्दन के वृक्षों का यह वन लकड़हारे के नाम कर दिया। उसको सूचना दे दी गई। कई वर्ष व्यतीत हो गए। राजा एक दिन अपने महल में बैठे थे कि लकड़हारे का ध्यान आया। प्रसन्नता के साथ उन्होंने सोचा अब तो लकड़हारा बहुत धनी हो गया होगा। कई भवन तथा महल बनवा लिये होंगे। इसलिए चलकर उसे देखना चाहिए। अपने मन्त्रियों को साथ लेकर वह उस वन में गया, जो लकड़हारे को दिया था। किंतु वहाँ कोई बन ही नहीं था, न चन्दन का कोई वृक्ष। राजा ने घबराकर अपने मन्त्री से पूछा—"अरे ! वह वन कहाँ है। जो लकड़हारे को दिया था। किसी और स्थान पर होगा तुम मुझे अन्य स्थान पर ले आये हो।" मंत्रियों ने पदाधिकारियों की ओर देखा पदाधिकारियों ने कागज की ओर। छानबीन करके बोले—"महाराज वह जंगल तो इसी स्थान पर था।" राजा ने कहा—"फिर वह गया कहाँ ? और वह लकड़हारा कहाँ ?" खोज करने पर कुछ दूरी पर चन्दन के कुछ वृक्ष दिखाई दिये। उनके पीछे बैठा हुआ लकड़हारा भी दिखाई दिया निराश और उदास, विचार मग्न। राजा ने उसके पास जाकर पूछा--"अरे ! तू चिंता में क्यों है ?" लकड़हारे ने प्रणाम करके कहा—"अन्नदाता ! आपकी कृपा से इतने वर्ष तो कट गये, किंतु अब ये पेड़ रह गये हैं थोड़े दिनों में ये भी समाप्त हो जावेंगे। सोचता हूं कि इसके पश्चात क्या करूंगा ?" राजा ने आश्चर्य पूर्वक कहा—"वृक्ष थोड़े रह गये हैं और शेष वृक्षों का क्या किया तूने ?"

लकड़हारा बोला -"नित्य लकड़ी काटता हूँ, कोयला बनाता हूं और बाजार में जाकर बेच देता हूं। लकड़ी के बदले कोयले का मूल्य अधिक होता है।" राजा ने दुःख से कहा —"अरे भाग्य हीन? यह तुमने क्या किया' यह तो चन्दन की लकड़ी थी। इसे जलाकर कोयला क्यों बना दिया ?" लकड़हारा बोला —"चन्दन की लकड़ी क्या होती है ?" राजा बोला—"अच्छा होता यदि तू जानता। अभी एक लकड़ी काट मेरे सामने कोई दो तीन फीट की, और ले जा इसे बाजार में। कोयला न बनाना इसका।" लकड़हारे ने वैसा किया। एक दूकानदार ने देखा लकड़ी है असली चन्दन की, लकड़हारा है गंवार। बोला—"क्या लेगा इसका ?" लकड़हारे ने पूछा – तुम क्या दोगे ?" दूकानदार ने कहा—"एक रुपया लकड़हारा आश्चर्य से चिल्लाकर बोला—एक रुपया !" उसका तात्पर्य था कि इस छोटी सी लकड़ी का एक रुपया दूकानदार समझा, यह जानता है, बोला--"दो रुपया। लकड़हारा और भी आश्चर्य से चिल्लाकर बोला—"दो रुपये दूकानदार ने घबरा कर कहा—"अच्छा चार रुपये।" लकड़हारा चिल्लाया -अच्छा चार." कुछ दूर पर एक और दूकानदार खड़ा था। उसने देखा कि पहला दूकानदार एक मूल्यवान वस्तु को कौडियों के भाव खरीद रहा है। उसे पुकार कर कहा -"अरे इधर आ। मैं दस रुपये दूंगा।" लकड़हारे ने जब दस का नाम सुना तो सिर को पकड़कर बैठ गया।" चिल्ला उठा धाड़ देकर रोने लगा अब उसे ज्ञात हुआ कि जिस लकड़ी का वह कोयला बना कर बेचता रहा है कितनी मूल्यवान थी। कितनी बड़ी संपत्ति का उसने विनाश कर दिया।

इस लकड़हारे की दशा पर, उसकी मूर्खता पर आपको करुणा आती है, किन्तु सुनो मेरे भाई ? हम स्वयं भी तो इस लकड़हारे की भांति हैं। राजाओं के राजा उस परमात्मा ने न जाने किस

बात से प्रसन्न होकर सांसोंका यह चंदन से पूर्ण वन हमें दिया था हमने इसे कुत्सित वासनाओं, घृणा, पाप की अग्नि में जलाकर भस्मसात् कर दिया। कितने मूल्यवान हैं ये सांस। यह हमने समझा नहीं। अरे ? सुनो जब महारानी विक्टोरिया का अंतिम समय आया जब बचने की आशा न रही, तो बड़े बड़े डाक्टर बुलाये गए। घोषणा की गई की महारानी को एक मिनट के लिये भी जीवित रक्खो तो एक लाख पोंण्ड मिलेगा किन्तु कोई एक मिनट भी जीवित न रख सका। कितना मूल्यवान है सांसों का यह चन्दन वृक्षों से पूर्ण वन, जिसे हमने काम, क्रोध,लोभ, मोह और अहंकार की आग में जलाकर कोयला बना दिया। परन्तु जो होना था सो हो गया। अब रह गये हैं चंदन के थोड़े से वृक्ष थोड़े से वर्ष रह गये हैं इस जीवन के शायद थोड़े से महीने। आओ इन्हीं का ठीक ठीक उपयोग करो। यत्न करो तुम्हारा लोक और परलोक सुधर जाये। लोक और परलोक सुधारने के दो साधन हैं—यज्ञ और गायत्री। किन्तु गायत्री क्या है ? अवश्य ही आप गायत्री मन्त्र को जानते हैं वह आर्य और हिन्दू ही क्या जो गायत्री मंत्र से परिचित न हो। यह मंत्र हमारी सबसे बड़ी सम्पति है। इसमें हमारी संस्कृति, सारी सभ्यता समस्त सम्पति, समस्त कर्म निहित है इसमें ईश्वर की स्तुति है, उपासना है, प्रार्थना है। इसलिये हमारे पूर्वजों ने ऋषियों ने महात्माओं ने, योगियों ने, और हमारे ग्रन्थों ने इसे गुरु मंत्र का नाम दिया किन्तु क्या है वह मंत्र ?

सबसे पहले इसमें 'ओ३म्' है, फिर 'भूः' 'भुवः', स्वः'। 'ओ३म्' स्वयं एक मंत्र है,संसारका सबसे बड़ा मंत्र गायत्री मंत्र से भी बड़ा ब्रह्मा ने 'ओ३म' की व्याख्या करते हुए कहा...."ओ३म अ': 'उ' और 'म' के तीन अक्षर ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद के प्रतीक हैं। इसमें तीनों वेदों का सार है।

ये तीनों अक्षर 'भूः' भुवः, स्वः' के प्रतीक हैं। भूः भुवः' स्वः का अर्थ आपको अभी बताऊंगा। ओ३म् के विषय में इतना ही मैं जानता हूँ कि सब कुछ इसमें है, इस की महिमा का अन्त नहीं।

गायत्री मन्त्र के प्रारम्भ में इसको बोलते हैं, तब कहते हैं—'भुर्भुवः स्वः।' इन तीनों शब्दों के विषय में उपनिषद् ने कहा है-'यह सब शास्त्रों का और मंत्रों का सार है जो प्रजापति ने निकाल कर सामने रख दिया है।"

'भूः' का अभिप्राय प्राणों को देने वाला, प्राणाधार है। प्राण के बिना कोई भी वस्तु इस संसार में रह नहीं सकती। वर्तमान विज्ञान को भी अन्त में मानना पड़ा कि यह संसार प्राणों से भरपूर है। प्राणों के बिना कोई भी वस्तु यहां अपना अस्तित्व नहीं रखती, किन्तु हमारे ईश्वर ने पहले ही कहा—'भूः' प्राणों को देने वाला, प्राणों का आधार। ये 'भूः, भुवः, स्वः, तीनों शब्द भगवान् की प्रशंसा के सूचक हैं। ये प्रकट करते है कि ईश्वर क्या है?

भाटों और मीरासियों की तरह ईश्वर को उसके गुण बताते चले जाना तो कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। ईश्वर को प्रशंसा की आवश्यकता नहीं। वह हमारी चाटुकारिता का भूखा नहीं। हम यदि भगवान् की प्रशंसा करते है, स्तुति करते हैं और विशेष शब्दों से करते हैं, तो इस लिये कि इन शब्दों में जो गुण वर्णन किये गयें हैं उनका कुछ भाग अपने अन्दर भी धारण करने का यत्न करें। हम ईश्वर को कहते हैं प्राण-आधार, प्राणों को देने वाला। इससे लाभ तभी होगा जबकि हम स्वयं भी किसी के प्राण आधार बनें। किसी को प्राण यदि दे नहीं सकते, तो उसके प्राण लें भी नहीं सकते।

क्यों जी! हम जो ईश्वर को प्राणाधार कह कर उसकी प्रशंसा

करते हैं, तब स्वयं हम प्राणियों के प्राण लेते फिर तो इस प्रशंसा का

लाभ क्या है ? गायत्री के जाप का अर्थ यह नहीं कि हम ईश्वर को प्राणाधार मानकर बैठ जायें अपितु यह भी है कि हम स्वयं किसी के प्राण न हरें, हिंसा न करें। दूसरा शब्द है 'भुवः' इसका अर्थ है दुःखों का नाश करने वाला।

दुःख बहुत गम्भीर शब्द है। इसका ध्यान आते ही हृदय कांप उठता है। हम चाहते हैं कि दुःख हमारे पास न आवे। किन्तु दुःख क्या है ? आज मैं आपको बताना चाहता हूँ कि दुःख कोई वस्तु नहीं। हमने स्वयं इसको बना लिया है। दुःख चार प्रकार के होते हैं। एक वह जिन्हें हम स्वयं पैदा करते हैं, अपने कर्म से जन्म देते हैं। दूसरे वह जो असम्भव इच्छाओं को हृदय में धारण कर लेने से और उन इच्छाओं के पूरा न होने से होते हैं। तीसरे वह जो हमारे अभिमान के कारण उत्पन्न होते हैं। चौथे वह जो समाज के कारण, देश की स्थिति के कारण, और प्रकृति के कारण से उत्पन्न होते हैं। मंहगाई बेकारी, वर्षा का न होना, दंगा हो जाना, संग्राम छिड़ जाना अकाल का प्रकोप होना, इस प्रकार के दुःख समाज देश और प्रकृति के दुख हैं। इनमें हमारा कोई दोष नहीं। इसमें हमारा कोई वश नहीं। किन्तु शेष तीनों दुःख हमारे कारण से हमें भोगने पड़ते हैं। हम स्वयं इन्हें उत्पन्न करते हैं। अर्थात् दुःख जो हमें संसार में मिलते हैं उनका ७५ प्रतिशत भाग हम अपने लिए स्वयं उत्पन्न करते हैं।

प्रथम प्रकार के दुःखों में एक दुःख शारीरिक है। यह दुःख बिना सोचे विचारे खाने पीने और कार्य करने में होते हैं। हमारे सामने एक थाल रख दिया किसी ने। इसमें आलू भी हैं, कचालू भी, भिण्डी भी, तोरी भी, गोभी, मटर अचार, मुरब्बे रायते, खीर, बङ्गाली रसगुल्ले, घन्टे वाले की मिठाई कितना ही कुछ है।

शास्त्र कहता है कि खीर और दही इकट्ठा खाओगे तो शरीर

में रोग उत्पन्न होगा। हम शास्त्र की बात नहीं सुनते। जिह्वा की बात सुनते हैं। कई लोगों को तो मैंने ऐसा भी कहतेसुना है कि पेट में प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न भिन्न कोष्ठ हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न कोष्ठ तो वहाँ हैं नहीं। दोष पूर्ण वस्तुओं को एकत्रित कर देने से और बहुत अधिक भोजन से अस्वस्थता होती है अवश्य। आजकल तो रिश्वत से कितने ही कार्य चलते हैं। आपको किसी स्थान पर अपना सामान भेजना है, स्टेशन पर जाते हैं, माल गोदाम का क्लर्क कहता है कि साहब हमारे पास आपका सामान ले जाने को वेगन नहीं। आप चाटु-कारिता करते हैं रिश्वत देते हैं। क्लर्क आपका सामान भेज देता है। गाड़ी पर बोझ अधिक हो जाता है। मार्ग में टूट जाती है। पटरी से उतर जाती है। इस प्रकार लोग खाने के सम्बन्ध में भी रिश्वत से कार्य चलाते हैं। अचार, मुरब्बे, चटनियाँ जिह्वा को रिश्वत के तौर पर दी जाती हैं। इस प्रार्थना के साथ कि खाले थोड़ा और खाले। परन्तु माल गोदाम का क्लर्क तो रिश्वत ले सकता है। आपके माल को आगे भी भेजता है। आगे जाकर पेट की खराबी, सब रोगों की जड़ है। इस प्रकार शारीरिक दुःख हम स्वयं उत्पन्न करते हैं। और शारीरिक ही क्यों? मानसिक दुःख —वह दुख जिनका सम्बन्ध मन से है, इन्हें भी हम स्वयं ही उत्पन्न करते हैं। हम सोच लेते हैं कि अमुक व्यक्ति भी मेरा शत्रु है, फिर उस पर क्रोध करते हैं। घृणा करते हैं। सोचते हैं कि इसे क्रोध और घृणा से जलाकर राख कर देंगे। वह तो पता नहीं जलेगा या नहीं। परन्तु पहले अपने क्रोध से हम स्वयं तो अवश्य ही जलते हैं। दूसरे पर फेंकने के लिए कीचड़ तो उठा लिया हमने हाथ में, वह दूसरे पर गिरेगा या नहीं किन्तु हमारे अपने हाथ तो अवश्य मैले होंगे।

कई लोग कहते हैं कि हम भजन के लिए बैठते हैं तो निश्चित

नहीं लगता। और चित्त लगे किस प्रकार। वहां तो तुमने घृणा, नीचता, ईर्ष्या, मत्सरता, शत्रुता, क्रोध की अग्नि जला रखी हैं। जान बूझकर अपने आप को अशांत बना रक्खा है। फिर शान्ति क्या मिलेगी।

कभी किसी झील, तालाब या नदी में एक पत्थर फेंक कर देखो। पत्थर के गिरते ही लहरें उत्पन्न होगी। किनारे की तरफ बढेंगी। किनारों से टकरा कर फिर वापिस आयेगी। यही दशा मन की भी है। जो घृणा और क्रोध हम पर भेजते हैं इस से लहरें उठती हैं। लहरें दूर-दूर तक जाती हैं फिर दुगने वेग के साथ हमारे पास आती हैं। यह आपका अपना उत्पन्न किया हुआ दुःख नहीं तो और क्या है।

अमरीका के एक डाक्टर ने एक बार क्रोध की दशा में लिए गए श्वास को एक बोतल में भरा। घृणा और शत्रुता की उद्-गारों के समय निकलने वाले श्वास को भी जमा किया और तब देखा कि एक घण्टे के अन्दर क्रोध की दशा में जो श्वास मनुष्य से बाहर निकलता है उसमें इतना विष है कि यदि यह श्वास बीस सूअरों में इन्जेक्शन द्वारा प्रविष्ट कर दिया जाये तो वे मर जायेंगे।

इस प्रकार हम अपने दुःखों को आप ही उत्पन्न करते हैं। अपने लिए दुःख को स्वयं ही उत्पन्न करने का एक कारण मोह है। हम ऐसा समझ लेते हैं कि मैं मैं नहीं हूँ, प्रत्युत परिवार हूँ। अपनी सम्पति हूँ अपना निश्चित विभाग हूं। अपना बेटा, बींबी बच्चा हूँ। अपना मकान और दुकान हूँ। इस प्रकार से समझ लेने से बुद्धि का नाश होता है। और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य का सर्वनाश होता। अपने आप को केन्द्र बनाकर सब वस्तुओं को और सब लोगों को, हम अपने आप में लपेट लेना चाहते हैं। कोई पुरुष है। कोई स्त्री है, उस से प्रेम कर

लिया और समझ लिया कि इसका दुःख हमारा दुःख है। इसके सिर में पीड़ा है तो रोयेंगे हम। उसकी आंखें दुखती हैं तो चिल्लायेंगे हम। आखिर क्यों? एक सज्जन का मकान जल गया। मैं उससे मिलने गया। वह फूट-फूट कर रो रहा था। हाय! मैं जल गया। मैंने सुनकर कहा। अरे! तू मर गया तो यह बोलता कौन है, क्या तेरा भूत? तू मकान नहीं है। जल गया तो जल जाने दो। तू नहीं जला।

आप कहेंगे आनन्द स्वामी तू तो हो गया है फकीर। हमें यह उपदेश क्या देता है? हम यदि मोह न करें तो सन्तान की रक्षा किस प्रकार करें। इन्हें पालें कैसे? मैं कहता हूँ कि मैं सन्तान की रक्षा और पालन को छोड़ देने के लिये नहीं कहता। रक्षा करो और पालन करो अवश्य। मोह में फंस कर नहीं करो। केवल कर्तव्य समझ कर करो। चिड़िया और पक्षी भी अपनी सन्तान की रक्षा करते हैं। तो क्या यह सोचकर करते हैं कि जब हम बूढ़े हो जायेंगे तब ये हमें खिलायें। ऐसी भावना छोड़ दो। दुःख का नाश हो जायेगा गत वर्ष में आर्य समाज हनुमान रोड में ठहरा हुआ था तो एक मनुष्य मेरे पास आया। आकर दुःखी स्वर से बोला, मैं बहुत दुःखी हूँ मेरे साथ पटेल नगर चलो।' मैंने पूछा कि दुःख क्या है? उसने कहा कि मेरे दो पुत्र हैं। दोनों कमाते हैं। अच्छी पदवियों पर हैं। स्वयं भी (पेन्शन) पाता हूँ ३००) तीन सौ रुपये मासिक। मैंने कहा, 'यह तो हर्ष की बात है इसमें कष्ट क्या हुआ?' वह सवेग रो उठा। कमीज उठाकर अपनी पीठ दिखाई। रोता हुवा बोला 'स्वामी जी यह देखिये।' मैंने देखा उसकी पीठ पर बीसियों चिन्ह थे। कांप कर मैंने कहा 'यह किसने किया।' उसने कहा मेरे पुत्रों ने। प्रति मास जब मेरी पेन्शन आती है तो एक पुत्र

कहता है सारे रुपये मुझे दे दो। दूसरा कहता है कि मुझ को

दे दो। और मैं कहता हूँ कि सौ रुपया एक ले लो, सौ दूसरा, सौ मेरे पास रहने दो। वे कहते है तीन सौ के तीन सौ दे दो। तब मार-मार कर मूर्छित कर देते हैं। ईश्वर के लिये चलो। चलकर उन्हें समझाओ।' मैंने कहा, 'चलो चलता हूँ तुम्हारे साथ।' परन्तु उसके घर जाकर देखा एक लड़का एक कमरे में कुर्सी पर डटा बैठा है, दूसरे में दूसरा। इनका ढंग मुझे ठीक नहीं जचा। तब इस मनुष्य को मैंने एक और कमरे में ले जा कर कहा, 'कितनी पेंशन मिलती है तुम्हें।" उसने कहा, "तीन सौ।" मैंने कहा, फिर तुम यहाँ रहते क्यों हो तपोवन में जाकर रहो घर को छोड़ दो। यहीं लड़के तुम्हारा मान करेंगे। तुम्हारे पैर चूमेंगे। मुझे देखो मैंने अपना घर छोड़ दिया। मेरे पुत्र मेरे पीछे-पीछे भागे फिरते हैं। कोई कहता है, 'रुपया ले लो।' कोई कहता है, 'यह वस्तु ले लो।' प्रत्येक को चिन्ता है कि मेरा काम वह दूसरे से बढ़कर करें। चल मेरे साथ। मैं तुझे तपोवन का मार्ग बताऊं वह गिड़गिड़ा कर बोला—'कैसे जाऊं। —उन लड़कों का मोह मुझे नहीं जाने देता।' मैंने हंस कर कहा—'तो फिर मार खाते रहो बच्चू? शिकायत क्यों करते हो? अपना दुःख तुमने आप बना रक्खा है? 'इस प्रकार लोग मोह में फँस कर दुःख उठाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि बच्चों की रक्षा और पालन न करो। करो अवश्य, परन्तु इस प्रकार करो जैसे अध्यापक स्कूल का मास्टर और कालिज का प्रिंसिपल, अपने विद्यार्थियों की करता है। सद्व्यवहार के साथ गृहस्थाश्रम को चलाओ; किन्तु मोह में नहीं फसों। अब समय हो गया पूरा। इसलिये—"ओ३म् शम्"।

—:o:—

तीसरा दिन

प्यारी माताओं ! तथा सज्जनो ! गायत्री मन्त्र के पहले तीन शब्दों की, जिन्हें व्याहृतियां कहते हैं, बात कर रहे थे हम। 'भूः' शब्द की बात बताने के बाद मैं आपको बता रहा था। 'भूः' का अर्थ है दुःखों का नाश करने वाला। मैं आप को बता रहा था कि दुःख चार प्रकार के होते हैं, एक वह जिन्हें हम अपने लिए स्वयं उत्पन्न करते हैं' दूसरे वे जो ऐसी इच्छाओं को मन में स्थान देने से उत्पन्न होते हैं जिनका पूर्ण होना सम्भव नहीं। तीसरे वे जो अभिमान के कारण होते हैं और चौथे वे जो समाज के कारण, प्रकृति के कारण, देश की दशा के कारण, जाति-पाति के बंधनों के कारण होते हैं। इन चार प्रकार के दुःख में से केवल अन्तिम प्रकार के दुःख हमारे वश में नहीं हैं, हमारी इच्छा से वे उत्पन्न नहीं होते, उनको रोकने की शक्ति हम में नहीं। शेष तीन प्रकार के दुख सबके सब हमारे ही कारण उत्पन्न होते हैं, हम स्वयं ही इसे उपजाते हैं। चाहें तो उन्हें रोक भी सकते हैं, रोकते हैं नहीं और चिल्लाते रहते हैं कि दुःख बहुत हैं।

मैंने बताया कि जिन दुःखों को अपने लिए हम स्वयं उपजाते हैं, उनमें से एक प्रकार के दुःख वे हैं जिनका सम्बंध हमारे शरीर से है। जो वस्तु नहीं खानी है, उसे खा लेना' जो काम नहीं करना चाहिये, वह कर देना। इस प्रकार दोष हमारी बुद्धि का होता है। रोगी होता है शरीर और रोग दुखों का एक झुण्ड

लेकर हमारे सामने आ जाते हैं। महर्षि चरक ने अपने आयुर्वेद

शास्त्र में स्पष्ट लिखा है—"प्रत्येक प्रकार के शारीरिक रोग हमारी अपनी मूर्खता के कारण उत्पन्न होते हैं।" इस प्रकार मानसिक दुःख भी हम अपने लिए आप ही पैदा करते है। अपने आपको केन्द्र बनाकर हमारे आस-पास जो कुछ है उसे अपने आप समझ लेते हैं, यद्यपि वह अपना आप है नहीं, ऐसा समझ लेते हैं हम कि मकान हम हैं, व्यापार हम हैं, परिवार हम हैं। उन में से किसी को दुःख होता हैं तो हम उसे अपना दुःख बना लेते हैं। कर्तव्य की भावना से ऐसा करें तो दुःख न हो। परन्तु कर्तव्य की भावना से नहीं करते हैं मोह की भावना से। फिर काम, क्रोध, ईर्ष्या, शत्रुता, घृणा, सब जाग उठते हैं। इन जलते हुये अंगारों को अपने मन में उत्पन्न करके किसी दूसरे का हम कुछ बिगाड़े या नहीं बिगाड़े, अपने आप को तो अवश्य जलाते हैं। कीचड़ उठा लेते हैं हाथ में कि इससे किसी के नये शुद्ध स्वच्छ घुले हुए कपड़ों को मलिन कर देगें, उसके कपड़ों पर वह कीचड़ पड़े या नहीं, हमारे हाथों को तो वह मैला अवश्य करता है। यदि यह अपने आप से शत्रुता करना नहीं तो और क्या है ?

एक और प्रकार के मानसिक दुःख उन लोगों के लिये उत्पन्न होते हैं, जो सर्वदा जीवन के भद्दे गन्दे और घिनावने रूप को देखना ही अपना स्वभाव बना लेते हैं। प्रत्येक पुरुष में, प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक समय में सर्वदा दोष ही देखते है, बुराइयां ही प्रतीत होती है उन्हें कोई उत्कृष्टता या तो उन्हें दिखाई नहीं देती, या उसे देख कर वे इस प्रकार भुला देते हैं, जैसे उसका कोई अस्तित्व ही नहीं। ऐसे मनुष्य से यदि पूछिये कि आनन्द स्वामी कैसा है ? तो वे कहेंगे—"अजी क्या है आनन्द स्वामी स्वामी देखा है उसे संन्यासी बन गया है। अभी तक सेनक

पहनता है।" (श्रोतृगण ने उच्च स्वर से ठहठहाका मारा और

स्वामी जी कहते रहे—) ;'ऐनक पहनना कोई अवगुण तो नहीं किन्तु ऐसे प्राणी को कोई क्या कहे ? इन्हें आनन्द स्वामी में कोई अच्छी बात तो प्रतीत नहीं; केवल ऐनक ही दृष्टिगत हुई। अरे भाई ! माना कि स्यात ऐनक लगना अवगुण ही हो; परन्तु यह भी तो देखो कि बिचारे आनन्द स्वामी में कोई अच्छी बात भी है या नहीं।"

अभी पिछले दिनों प्रयाग के अन्दर कुम्भ का मेला हुआ। इतने लोग वहां इकट्ठे हुए कि प्रबन्ध करने वालों ने लाखों रुपये व्यय कर दिये उन्हें आराम पहुँचाने को। कोई भी रोग वहां उत्पन्न नहीं हुआ, आग नहीं लगी, बीमारी नहीं फैली। पचास लाख मनुष्य इकट्ठे हुए। कितने ही बड़े-बड़े यज्ञ वहाँ हुए। मैंने तो देखा कि स्थान-स्थान पर यज्ञ हो रहे थे। बड़े-बड़े महात्मा और उच्च कोटि के साधु अमृतमय उपदेश दे रहे थे। गो रक्षा का इतना बड़ा सम्मेलन वहाँ हुआ कि जितना बड़ा आज तक कभी नहीं हुआ। गो-भक्ति की जैसे एक धारा वह निकली। इतना प्रचार हुआ जिसका उदाहरण नहीं मिला। इनमें से किसी बात का कोई भी वर्णन नहीं करता। वर्णन करता है तो केवल उस दुर्घटना का जो वहां पर हो गई और जिसमें लगभग ढाई हज़ार मनुष्य मारे गए। यह बात ठीक तो नहीं। एक विचित्र प्रकार की मनोवृति बना ली है हमने। हम केवल दोष देखना चाहते हैं, गुण देखना नहीं चाहते। इससे किसी दूसरे को नहीं, स्वयं हमें ही दुःख होता है। संस्कृत में एक कहावत है—

*"भौरा मधु को खोजता, किन्तु गलियों और घरों में रहने वाली साधारण मक्खियाँ केवल गंदे व्रण (जख्म) की

---

*"भ्रमरा मधुमिच्छन्ति,व्रणं इच्छन्ति मक्षिका
सज्जना गुणमिच्छन्ति, दोष इच्छन्ति पामरा

और भागती है।"ऐसे मनुष्य होते हैं कई। एक गोरा चिट्टा, सुन्दर नौजवान मनुष्य है। उसके शरीर के एक भाग में छोटा सा एक फोड़ा हो गया है। गली की मक्खी उसके सुन्दर शरीर को नहीं देखेगी। उसके स्वास्थ्य की ओर उसका ध्यान नहीं जायेगा। वे भिन-भिनाती हुई आकर बैठेगी तो उस फोड़े पर तो भाई मेरे ? फोड़े से तो वही मिलेगा जो फोड़े में है, शहद मिलेगा नहीं। यदि शहद की इच्छा है तो शहद की मक्खी बन, गली की मक्खी न बन। दूसरों की अच्छाइयाँ देख, बुराईयां न देख। अपनी एक बात सुनाता हूँ आपको। मैं छोटा सा था। एक गाय थी हमारे घर में। पिता जी ने कहा—"जा, उसे घुमा ला पानी पिला ला।" हमारे गांव के पास एक तालाब था शायद उसे मुसद्दीवाना कहते थे। गाय उसके किनारे-किनारे घूमने लगी। मैं कुछ दूर पर जाकर खेलता रहा। कुछ देर बाद गाय को लेने आया' तो देखा कि उसके थनों के साथ चार पांच जोंकें चिपटी हुई हैं। बहुत फूली हुई, मोटी बनी हुई। मैं घबराया कि अब,पिता जी मारेंगे। रोता-रोता उनके पास पहूँचा। उन्होंने पूछा कि रोता क्यों है ? मैंने कहा—'ये जोकें!—सारा दूध तो ये पी गईं। अब गाय दूध कैसे देगी ?' पिता जी ने हंसते हुए कहा—'घबरा नहीं। ये जोकें हैं, ये दूध नहीं पीती, ये रुधिर पीतीं हैं। हाय रे दुर्भाग्य ! दूध ! जैसी अमृत वस्तु के पास पहुंच कर भी अभागी जोकों को दूध पीने की नहीं सूझती, केवल रुधिर पान करती रहीं वे, किन्तु केवल वे जोकें ही तो अभागी नहीं ! प्रत्येक मनुष्य अभागा है जो केवल बुराईयां ही बुराईयाँ देखता है केवल बुराईयों की ही चर्चा करता है। गाय के प्यार भरे बछड़े की भांति अमृत के पास पहुंच कर भी उसे अमृत की प्राप्ति नहीं होती। जोंकों की भांति उसे केवल मैला रुधिर मिलता है ऐसे

मनुष्य से कहता हूँ 'अपने लिये स्वयं दुर्भाग्य पैदा न करो बछड़ा बन, जोंक न बन, अमृत भरा दूध पी, रुधिर पान न कर।' इस प्रकार हम अपने लिये आप दुख पैदा करते हैं। ईश्वर को हम 'भुवः' कहते हैं। दुखों का नाश करने वाला कहते हैं, तो हमें स्वयं भी यह यत्न करना चाहिये कि दुखों का नाश करें, उन्हें व्यर्थ पैदा न करते चले जायें।

दूसरे प्रकार के अपने पैदा किये हुए दुख वे हैं जिन्हें हम असम्भव कामनाओं के कारण उत्पन्न करते हैं। शेखचिल्ली चला जाता है बाजार में। किसी ने गजरों का टोकरा उससे उठवाया है। वह सोचता है:—'उससे जो मजदूरी मिलेगी, उससे अमुक कार्य करूंगा।' धीरे-धीरे एक विशाल भवन बना लिया उसने अपनी कल्पना से। तभी लगी ठोकर, गजरे गये टूट। मालिक ने चिल्लाकर कहा—'अरे! सत्यानाश तेरा, तूने मेरे गजरे तोड़ दिए।' शेखचिल्ली ने माथे पर हाथ मार कर कहा—'तू अपने गजरों को रोता है' मेरा तो महल ही टूट गया है।' इस शेखचिल्ली की भांति हम भी कितनी बार असम्भव कामनाओं को मन में स्थान देते हैं। जब वे पूर्ण नहीं होती, तो रोते हैं चिल्लाते हैं। इसलिए शास्त्रों ने कहा:— 'उचित आहार कर, उचित व्यवहार कर उचति कर्म कर, उचित यत्न कर।'

उचित यत्न क्या? ऐसा यत्न कर जो पूर्ण हो सके। संभव यत्न, असम्भव चेष्टा न कर। तेरे पास यदि ढाई हाथ की चादर है तो तू उसमें साढ़े तीन हाथ के पांव न फैला। इच्छा कर कर्म भी कर, परन्तु इच्छा वह कर जो तेरी शक्ति के अनुसार हो। अपनी शक्ति से बाहर जो बात है उसके लिये जो इच्छा करेगा, तो परिणाम होगा दुख। इस प्रकार अपने दुखों

का पचहत्तर प्रतिशत भाग हम स्वयं उत्पन्न करते हैं। अपने लिए उत्पन्न किये हुए दुःखों का अन्तिम प्रकार वह है जो कि अभिमान से उत्पन्न होता है। दूसरी बातों की भाँति झूठा अभिमान भी दुःखों को पैदा करने वाला है। इसीलिए किसी ने कहा था—

लेने को हरि नाम है, देने को कुछ दान।
तारन को है नम्रता, डूबन को अभिमान।"

अरे इस अभिमान के कारण रावण जैसा महाबली मारा गया। साधारण मनुष्य था वह! चारों वेदों का पण्डित था। लोग उस से वेदों का अर्थ पूछने जाते थे। अपने समय का सब से धनी, सब से बलवान महाराज था, परंतु उसके ज्ञान को और क्रूरता को अभिमान का ग्रहण लग गया, उसका सुख उसके अपने ही कारण दुःख में बदल गया।

किंतु यह सुख और दुःख है क्या? कई बार इस बात को न समझने से भी दुःख होता है। कैसे होता है यह बताता हूँ? सुख और दुख वास्तव में किसी वस्तु का नाम नहीं किसी दशा का नाम नहीं किन्तु अपने दृष्टि कोण का नाम है। एक हीं वस्तु से बात से, या दशा से एक मनुष्य सुखीं हो सकता है: दूसरा आदमी दुःखी भी हो सकता है।

एक थे सेठ साहब, बहुत बड़े बहुत धनाढ्य। कितने ही लोगों पर कितने ही अभियोग इन्होंने चला रखे थे। किसी अभियोग में जीत होती तो प्रसन्न होते, हार होती तो दुःख सागर में डूब जाते। एक दिन वे पालकी में बैठ कचहरी को जा रहे थे चार कहारो ने पालकी को उठा रखा था' सेठ साहब थे मोटे। कहारों को पसीना छुट रहा था, कांप रहे थे वे। किंतु ज्यों २ कचहरी समीप आ रही थी, त्यों २ कहार अपने दुःख के रहते हुए

भी सुखी हो रहे थे कि थोड़ी ही देर बाद यह बोझ कंधों से उतर जायेगा। किन्तु पालकी के अन्दर बैठे हुये सेठ साहब कचहरी की ओर उठते हुए प्रत्येक पद पर उदास होते जाते थे, चिंता के सागर में डूब जाते थे, न्यायाधीश ने आज निर्णय देना है। न जाने वह क्या निर्णय देगा। न जाने मेरे कितने रुपये मारे जायेंगे। यदि सारे ही मारे गये तो यह बड़ा अनर्थ होगा और अब समय आ रहा है अत्यंत समीप-समीप बोझ को उठाये हुए कहार सोचते हैं समीप, समीप, समीप, और सुखी होते हैं। पालकी में बैठा हुआ सेठ सोचता है समीप, समीप, समीप, और दुखी होता है। बात एक है। एक को सुख की उपलब्धि होती है दूसरे को दुःख की।

सुख और दुःख वास्तव में किसी दशा का नाम नहीं, किंतु केवल दृष्टिकोण का नाम है। दृष्टिकोण को बदल दो बहुत से दुःख सुख में बदल जायगे।

योग और सांख्य दर्शन के कर्ता महर्षियों ने तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन किया है :-परिणाम दुःख अर्थात अन्त में उत्पन्न होने वाला दुख ताप दुख; अर्थात वह दुख जो विचार से पैदा होता है और संस्कार दुख; अर्थात वह दुख जो पुराने भोगे हुए दुखों को याद करते रहने से जन्म लेती है। पहले प्रकार के दुःखों में से एक है यौवन का बुढ़ापे में परिवर्तन। कोई चाहे या न चाहे यौवन का बुढ़ापे में परिवतन होना अवश्य भावी है। इस जीवन की समाप्ति है अवश्य। ईश्वर की अमर कविता ऋग्वेद के पहले मण्डल के ७१ वें सूक्त की दसवी ऋचा है*। इसे आपको सुनाता हूं। देखिये, इसमें यौवन और बुढ़ापे का, जीवन और मृत्यु का चित्र अंकित किया है। इससे अधिक कवितामय चित्र भी आपने कभी देखा है ? इस वेद मंत्र का

*नमो न रूपं जरिमामिनातिपुरातस्या अभिशस्तेरधीहि ॥"

भावार्थ सुनिये "जब आकाश में घने गहरे बादल छा जाते हैं। जब वे पानी से भरपूर हो उठते हैं। तब एक-एक बूंद करके वर्षा होने लगती है, अन्त में वर्षा समाप्त हो जाती है। आकाश स्वच्छ हो जाता है। इसी प्रकार बुढ़ापा आकाश में छाऐं बादलों की भाँति रूप यौवन को नष्ट कर देता है।" जीवन का प्रत्येक श्वांस बूंद बूंद करके वर्षा की भांति बरसता है और तब एक दिवस आता है जब जीवन का बादल समाप्त हो जाता हैं आकाश स्वच्छ हो जाता है। यौवन के बादलों की घनघोर घटायँ हलकी पड़ जाती हैं और मृत्यु आ टपकती है।

हां मेरे भाई, मेरे बेटे, मेरी बच्ची ? आकाश निर्मल हो जाता है। कवि ने कहा था-" जो जाके न आये, वह यौवन देखा जो आके न जाये, वह बुढ़ापा देखा।"

इसी प्रकार परिणाम का परिवर्तन का यह दुःख होता है। कपड़े हैं नए, धीरे-धीरे मैले हो रहे हैं। अन्त में एक दिन इन्हें उतार देना है। विद्युत की टार्च में बैट्रियां डाली हैं नई, किंतु धीरे २ वे समाप्त हो रही हैं, एक दिन इन्हें निकालकर फेंक देना है। इस तरह निरन्तर होते हुए परिवर्तन से जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे परिणाम का दुःख कहते हैं। उसी प्रकार ताप दुःख सोचने से उत्पन्न होने वाला दुःख वह है जो केवल चिन्ता के कारण जन्म लेता है। एक मनुष्य है अच्छा भला घर में प्रत्येक प्रकार की सुविधा है। धन है, माया है, लक्ष्मी है , परिवार है। परन्तु प्रत्येक समय यह चिंता लगी रहती है कि पता नहीं कि सुख रहेगा या नहीं। ज्ञात नहीं इसकी कब समाप्ति होगी। यह चिन्ता अच्छे भले सुख को भी दुःख से भरपूर कर देती है। और संस्कार दुःख वह है जो पुराने, दुखों कि स्मृति के कारण उत्पन्न होता है। मुझे अमुक रोग हुआ था, मुझ पर अमुक अभियोग लगा था, मुझे अमुक स्थान

पर आघात पहुँचा था, ऐसी ऐसी बातें करके कई लोग व्यर्थ दुःखी होते हैं। परन्तु योग दर्शन और सांख्य दर्शन में तीनों प्रकार के जो दुःख बताए हैं, इनमें से एक के अतिरिक्त शेष दो क्या हम स्वयं उत्पन्न नहीं करते ? परिणाम से (परिवर्तन)होने वाले दुःख पर हमारा कोई वश नहीं। परन्तु शेष दोनों हमारे वश में हैं । क्यों हमने अपने जीवन को आपत्ति का घर बना रक्खा है। आप कहेंगे, अच्छा आनन्द स्वामी ! दो प्रकार के दुख तो छोड़ दिए, तीसरे प्रकार का दुःख तो होता है। फिर दुःख से बचें किस प्रकार।

परन्तु सुनो मेरी माताओ ! सुनो मेरे भाइयों ?

परिणाम तो संसार में होना ही है , फिर इसके कारण दुःखी काहे को होना। जो बना है वह तो मिटेगा अवश्य। तुम्हारे दुःखी होने और चिन्ता करने से वह बचेगा नहीं । कई लोग आश्चर्य से पूछते हैं, 'संसार यदि ऐसा है तो ईश्वर ने इसको बनाया क्यों ? लो आज तुम्हें वेद भगवान के प्रसंग से इस प्रश्न का उत्तर बताता हूँ । आज के बाद यदि कोई पूछे कि ईश्वर ने संसार की रचना क्यों की ? तो उसे वेद के यह शब्द सुनाओ, "श्रमेण तपसा सृष्टा (अथर्व १२, ५,१)ईश्वर ने संसार की रचना इसलिए की कि मनुष्य श्रम कर सके और धर्म के मार्ग पर चल सके। परन्तु इसके साथ ही इस वेद में भगवान ने कहा–

और इसलिये कि श्रम और तप के मार्ग पर चलता हुआ नाचे हंसे और प्रसन्न रहे। प्रसन्न रहने के लिये जो शब्द वेद में आया है वह आज्ञा के रूप में आया है। इस शब्द के द्वारा ईश्वर केवल मार्ग ही नहीं दिखलाते प्रत्युत आदेश करते हैं कि नाचो, हंसो प्रसन्न रहो। किन्तु आप कहते हैं कि यह तो बड़ी-बडी दार्शनिक बातें करता है तू। 'सीधी सी समझ में आने वाली बात कर यह बता कि सुख और दुःख क्या है ? तो लो सुनो सीधी

सी साधारण बात। इन्द्रियों की सन्तुष्टि होना ही सुख है और इनकी सन्तुष्टि न होना ही दुःख, अर्थात अतृप्त होना ही दुःख है। सुख और दुःख दोनों देव भाषा संस्कृत के शब्द हैं। 'सु' का अर्थ है 'अच्छा'। 'दुः' का अर्थ है 'बुरा' ' 'ख' कहते हैं इन्द्रियों को। 'सुख' का अर्थ है अच्छी इन्द्रियां। दुःख का अर्थ है बुरी इन्द्रियां। अब बताओ कि यदि इन्द्रियों को अपने वश में कर लो तो दुःख रहेगा कहां ?

बार बार एक ही बात मैं आपके मन में बैठाने का यत्न कर हार,हूँ कि जिसे आप दुःख समझे बैठे हैं, वास्तव में दुःख नहीं। अपने दुःख को आप स्वयं उत्पन्न करते हैं। ऐसा करना बन्द कर दो तो ७५ प्रतिशत दुःखों का अन्त स्वयं ही हो जायेगा।

कई लोग मेरे पास आते हैं कहते हैं हमारा भजन करने को जी चाहता है। यह भी मानते हैं कि भजन करने से मन में आनन्द उत्पन्न होता है किन्तु क्या करें ? भजन करने बैठते हैं तो जी नहीं लगता। अरे भोले बच्चो ! जी लगे किस प्रकार तुमने स्वयं ही तो इसमें ईर्ष्या और घृणा की अग्नि दहका रक्खी है। इसे बुझा दो। जी अवश्य लग जायगा। देखो' तुम्हें अपने अनुभव की बात सुनाता हूं मैं जब गृहस्थ आश्रम में था वर्ष में एक या दो मास के लिए किसी एकान्त स्थान में चला जाता था अपने आपको प्रभु के चरणों में अर्पण कर देने के लिए। अपने साथ आटा कुछ दाल और घी, छोटा सा बिस्तर थोड़े से कपड़े लेकर, किसी जंगल में जाकर,पत्तों की कुटिया बनाता था। उसमें रहने लगता था, दिन में एकबार दो रोटियां बनाकर खा लेता था शेष समय अपने मन मन्दिर में अपने प्रभु के दर्शनों का प्रयत्न करता था। एक बार घर से तैयारी करके जिला कांगड़ा के जंगल में जा पहुँचा। वहां पहुँचा और हवन किया इसके पश्चात मौन धारण करके अपने कार्य में रत हो गया। मन के

रोगों को देखने लगा। इन्हें दूर करने का यत्न करने लगा। परन्तु एक दिन दो दिन तीन दिन बीत गए। चित्त को शान्ति नहीं मिली मैंने दुःखी होकर भगवान से कहा-प्रभो ! यह क्यां बात है? तेरे द्वार पर आकर भी मेरे चित्त में शान्ति क्यों नहीं? दुःखी होकर बैठा रहा। प्रातः ५ बजे स्नान करके फिर से भजन करने के लिए बैठा तो एक विचित्र बात हुई। ऐसा विदित हुआ जैसे भीतर से एक ध्वनि पुकार रही हो स्पष्ट सीधे शब्दों में उसने कहा—"व्यर्थ है तेरा भजन व्यर्थ है तेरा आत्मा चिन्तन। लाहौर में एक पुरुष है उससे तू घृणा करता है। जब तक यह घृणा तेरे हृदय में रहेगी तब तक मन को शान्ति नहीं मिलेगी भजन में जी लगाना चाहता है तो जा पहले उससे क्षमा मांग। इस घृणा को त्याग दे जो तेरे मन में है।" मैंने इस ध्वनि को सुना तो अशान्ति का कारण जैसे सजीव होकर मेरे सामने खड़ा हो गया। उसी समय मैंने अपना बिस्तरा लपेटा घर में वापिस आया। तो घर वाले विस्मय में कि यह इतनी शीघ्र घर कैसे आ गया। किंतु मैंने किसी से बात नहीं की। सामान रखा और सीधा उस सज्जन के घर में गया। यहाँ उनका नाम नहीं लूंगा उनके मकान पर जाकर पुकारा, वह पुकार को सुन कर बाहर आये। आश्चर्य से बोले, "आप ?" मैंने पगड़ी उतार कर उसके चरणों में रख दी, बोला, मैं क्षमा मांगने आया हूँ मुझे क्षमा करना होगा।" वह आश्चर्य करने लगा कि इसे क्या होगया? मैंने कहा, "आश्चर्य में मत पड़ो।" मैं जंगल में अज्ञात वास के लिए गया। वहीं से अन्तरात्मा की अन्तध्वनि हुई। मैं आत्म चिन्तन छोड़कर सीधा वहां आ गया। आप क्षमा नहीं करेंगे तो मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी।" यह सुनते ही उनकी आँखों में आसू आ गए। अपने सीने से लगा लिया उन्होंने मुझको। वे भी रोये, मैं भी रोया। परन्तु इस रोने से घृणा की

अग्नि शान्त हो गई । मैं वापिस जंगल में गया, वहाँ भजन में बैठा तो चित्त में अपार आनन्द हुआ। फिर चित्त नहीं लगे, ऐसी बात हुई नहीं।

बहुत पहले की बात है कि मथुरा में 'राजा बाबू' नाम के एक सेठ रहते थे । धर्म की ओर उनकी बहुत रुचि थी। कितने ही मंदिर उन्होंने बनबाये, एक पाठशाला भी बनवाई जिसमें विद्वान संन्यासी पढ़ते थे। राजा बाबूका एक और सेठ लक्ष्मीचन्द के साथ झगड़ा था, जो जमीन के सम्बंध में था। झगड़ा बढ़ते-बढ़ते न्यायालय में पहुंचा। अभियोग चलने लगा । कई वर्ष अभियोग चलता रहा। राजा बाबू यहअभियोग भी लड़ते थे और अपने घर के काम भी करते थे। उनकी बनवाई हुई पाठशाला में प्रत्येक रात्रि को कथा होती थी। राजा बाबू सर्वदा उसे सुनने जाते। कथा सुनते २ उनको संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने गुरु से पूछ कर वे पाठशाला में रहने लगे। एक कमरे में पड़े रहते थे खाना घर से आ जाता वे खा लेते और जाप करते रहते बहुत समय बीत गया। एक दिन उन्होंने अपने गुरु को कहा— "यदि आप की कृपा हो तो सन्यास ले लूं।" गुरु ने कहा—"नहीं राजा बाबू ! अभी तुम संन्यास के योग्य नहीं हुए।" राजा बाबू ने सोचा—"मैं घर नही जाता परन्तु मेरी,रोटी तो घर से आती है। अब घर से रोटी नही मंगवाऊंगा। यहीं एक नोकर रख लूंगा' वही बना दिया करेगा।, ऐसा ही किया उन्होंने और फिर कुछ दिन बाद यह सोचकर कि अब तो घर से कोई सम्बंध नहीं, वे फिर बोले—गुरु महाराज ? अब यदि संन्यास ले लूं तो ?" गुरु ने कहा—"नहीं अभी समय नहीं आया।" राजा बाबू ने सोचा—"मैं अभी नौकर से रोटी बनवाता हूँ। इसलिए गुरु जी नहीं मानते। अब यह भी छोड़ दूंगा। भिक्षा माग कर खाऊंगा और आरामकी सब वस्तुएं भी छोड़ दूंगा तब ऐसा

ही किया उसने। सुबह के समय नगर में जाता भिक्षा करके लाता और सारा दिन आत्म चिन्तन में मस्त होकर बैठा रहता। पर्याप्त समय बीत गया। फिर प्रार्थना की गुरु से— "गुरु जी! मुझे संन्यास दे दीजिये।" गुरु ने सोच कर कहा—"अभी नहीं राजा बाबू।" और राजा बाबू आश्चर्य चकित कि अब क्या त्रुटि रह गई।" सोच कर देखा और फिर अपने आपको कहा—"मैं सभी स्थानों पर मांग ने गया हूँ परन्तु सेठ लक्ष्मीचन्द के यहां माँगने नहीं गया। इसलिए शत्रुता की पुरानी भावना अब भी मेरे हृदय में बसी हुई है। इस भावना को छोड़ देना होगा "और दूसरे दिन प्रातःकाल ही सेठ लक्ष्मीचन्द के मकान पर पहुँच गया। जाकर अलख जगाई— "भगवान के नाम पर भिक्षा दे दो।' सेठ लक्ष्मीचन्द के नौकर ने राजा बाबू को देखा तो दौड़े-दौड़े सेठ के पास गए। हाँपते हुए बोले—,'सेठ जी! राजा बाबू आपके यहाँ भीख मांगने आया है।" लक्ष्मीचन्द आश्चर्य से बोले —"यह कैसे हो सकता है। तुम्हें भ्रम हुआ। कोई और होगा वह।" नौकरों ने कहा—नहीं, सेठ जी! यह राजा बाबू है। यदि आप कहें तो खाने में विष मिला कर दे दें। सवदा के लिए झगड़ा समाप्त हो जायगा।" लक्ष्मीचन्द उच्च स्वर में बोले—"नहीं मुझे देखने दो।" मकान के द्वार पर आकर उन्होने देखा कि राजा बाबू झोली पसारे खड़े हैं। राजा बाबू ने उन्हें देखा और झोली फैला कर बोलै—,'सेठ जी! भिक्षा।" लक्ष्मीचन्द दौड़ कर आगे बढ़े, चिल्ला कर बोले "राजा बाबू!'; राजा बाबू को अपनी छाती से लगा लिया उन्हों ने। राजा बाबू ने झुक कर उनके चरणों का स्पर्श किया। लक्ष्मीचन्द भी उनके पैरों में जा गिरे, बोले—"राजा बाबू! ऊपर चलों, मेरे साथ बैठ कर खाना खाओ।" राजा बाबू बोले— "नहीं सेठ जी! मैं तो भिखारी बन कर आया हूं, भीख माँगने

आया हूं भीख डाल दो मेरी झोली में।"

उसी समय एक नोकर भागता हुआ, आया बोला—'सेठ जी! आप का तार देखिये इसमें क्या लिखा है ?"लक्ष्मीचन्द ने खोलकर पढ़ा। तार राजा बाबू के बेटों का था कलकत्ता से आया था लिखा था—"हमारे पिता राजा बाबू का कहीं पता नहीं लगता। भूमि का झगड़ा अभी समाप्त नहीं हुआ, किन्तु इस जमीन को लेकर हम क्या करेंगे? इस तार के द्वारा हम भूमि पर से अपना अधिकार वापिस लेते हैं। हमारे पिता जी नहीं हैं। आप कृपा करके हमारे पिता बनिये। हमें अपनी रक्षा में लीजिये।" लक्ष्मीचन्द रोते हुए बोले—"नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा। उन्हें लिखो कि भूमि उनकी है मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं पिता बन कर उनकी रक्षा करूंगा। आज से केवल राजा बाबू के नहीं मेरे भी बेटे हुए" पश्चात राजा बाबू भिक्षा लेकर मुड़े तो देखा सामने गुरु जी खड़े हैं हाथ में गेरुए वस्त्र लिए हुए हैं। राजा बाबू को छाती से लगाकर बोले—"अब तू सन्यास के योग्य हुआ राजा बाबू! अब ये कपड़े पहन।"

इस प्रकार यह बात है प्यारी माताओ! तथा सज्जनों मन के अन्दर जब तक घृणा है तब तक गायत्री के जाप का क्या लाभ? इससे कुछ होगा नहीं गायत्री की उपासना यदि करनी है तो मन से घृणा को दूर भगा दो, ईर्ष्या और वैर की भावना को दूर निकाल दो, तो फिर देखो आनन्द और सुख मिलता है कि नहीं?"

एक दूसरे प्रकार के दुःख मनुष्य की मानसिक निर्बलता के कारण उत्पन्न होते हैं। एक सज्जन आये मेरे पास, बोले—"मेरी पत्नी रुग्ण हैं बहुत औषधियां की, परन्तु ठीक नहीं होती। आप उसे चल कर देखिये;" मैं गया जाकर देवी जी को देखा पूछा कि आपको क्या रोग है? वह बोली कि भूख ठीक नहीं

लगती। मैंने पूछा क्या खाती है तू ? उसने बताया—"एक सेर दूध, थोड़ी मक्खन, बादाम, कभी-कभी पिस्ते भी, ५-६ केले, एक एक दर्जन मुसम्मी, थोड़े से दूसरे फल, बस, यही खाती हूँ।" मैंने हंसते हुए कहा—"तू बीमार है या किंग कौंग ! अच्छी भली है तू, तुझे बीमारी क्या है ?" वह बोली मुझे कुछ चिपट गया है।" मैंने पूछा—"कब चिपटा है ?" वह बोली—"सायं काल।" मैंने कहा। "तू चिन्ता न कर आज शाम को ऐसा चिमटा मारूंगा उसे कि वह चिपटना भूल जायेगा, तेरे पास नहीं आयेगा।' मैंने कुछ कराया नहीं, किन्तु उसने विश्वास कर लिया कि स्वामी जी ने चिमटा मार दिया है। फिर उसे हुआ कुछ नहीं, वह अच्छी हो गई। यह मन की निर्बलता से उत्पन्न दुःख है।

अतः इस प्रकार के भी दुःख होते हैं। मानसिक निर्बलता के कारण भूत और प्रेतों की काल्पनिक धारणा बना लेने से ही होता है। फिर इस धारणा से ही हम डरते रहते हैं। अपनी एक बात सुनाता हूँ आपको। मैं आठ नौ वर्ष का था, तो हमारे गाँव जलालपुर जट्टाँ में स्वामी नित्यानन्द जी आये हमारे बाग में ही ठहरे। वह गाँव से लगभग एक मील की दूरी पर था। गाँव और बाग के बीच सड़क पर बरगद का एक विशाल वृक्ष था। गाँव भर में इसके विषय में विश्वास था कि वहाँ रात को भूत आते हैं। जो कोई उसके नीचे से निकले उसे भूत पकड़ लेते हैं किन्तु गाँव से बाग में जाना हो तो बरगद के नीचे होकर निकले बिना जाने का और कोई मार्ग न था। गाँव भर में जो बात प्रसिद्ध थी उसे मैं भी जानता था। मेरे चित्त के अन्दर भी वह घर किये बैठी थी। स्वामी नित्यानन्द जी आये, तो पिता जी ने मुझे काम सौंपा कि प्रातःसायं दोनों समय तू उनका खाना ले जाया कर। एक दिन सांयकाल को मैं उनका खाना लेकर गया, तो खाते-खाते

बहुत सुन्दर बातें सुनाने लगे। रात हो गई मुझे सहसा ध्यान आया कि अब वापिस जाते समय बरगद के नीचे से जाना पड़ेगा। चित्त में भयभीत होते हुए मैंने कहा –"स्वामी जी ! अब तो रात बहुत हो गई। मैं यही सो जाऊँ, सुबह ही उठकर चला जाऊँगा।" स्वामी जी क्रोध से बोले—"नहीं, नहीं, जा, मुन्शी जी प्रतीक्षा करते होंगे।' मैं विवश होकर बर्तन लेकर चल पड़ा। थाली में रक्खी कटोरियाँ हाथ पर थाली को रक्खे वापिस आने लगा। चलते २ जब आया बरगद का पेड, तो हाथ पर रक्खी थाली काँपी। बर्तन खड़खडाये। मैंने समझा आ गया भूत। बर्तनो को वही फेंक कर ज्यों दोड़ा कि पीछे फिर कर नहीं देखा। दौड़ता-दौड़ता अपने घर पहुचा और धड़ाम से गिर पड़ा। माता जी ने पूछा—'क्या हुआ।' मैंने कहा—'हुआ कुछ नहीं। वह बरगद का भूत ....। बर्तन वही पड़े हैं। किसी को भेजिये, ले आये। 'परन्तु बाद में जब मैं बड़ा हुआ तो ज्ञात हुआ कि भूत प्रेत कुछ नहीं होते। तब मैं उस बरगद के वृक्ष को देखकर मुस्कराता। रात के समय भी उसके नीचे गया, तो कोई भूत प्रेत, चुडैल मुझे दृष्टिगत नहीं हुए।

इस प्रकार हृदय की निर्बलता के कारण भी दुःख उत्पन्न होते हैं। बहुत से दुःख इसी निर्बलता से जन्म लेते हैं। सुख की इच्छा हो' दुःखो का नाश करना हो तो चित्त की निर्बलता को छोड़ देना चाहिये। निर्बलता की भावना हृदय में आने के स्थान पर उसमें उच्च विचार और सत्संकल्पों को पैदा करना चाहिये। वेद बार बार कहता है—

'मेरे इस मन में शिव संकल्प की उत्पत्ति हो।'

ये संकल्प ही तो हैं जो मनुष्य को पीड़ित करतें हैं, जो उसका उत्थान करते है, उसका पतन करते हैं। पहाड़ की चोटी पर भी पहुँचा देते हैं और उसे गड ढे में भी फेक देते हैं।

'दिल ही की बदोलत रंज भी है, दिल ही की बदौलत राहत भी
यह दुनियाँ जिसको कहते हैं ,दोजख भी है जन्नत भी।

अपने ही विचार से स्वर्ग और नर्क बनता है, जैसा चाहो बना लो यह तुम्हारे वश में है। जैसा विचार करो वैसा ही, संसार बनेगा। प्रत्येक मनुष्य अपना संसार आप बनाता है, अपने बनाये हुए संसार में ही पैदा होता है और उसमें रहता है, आपके संबन्धी कैसे हैं? वातावरण कैसा है यह सब विचारों पर ही निर्भर है। इंजीनियर जिस प्रकार मकान बनाने से पहले नक्शा (चित्र) बनाता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने संसार का चित्र अपने हृदय में तैयार करता है। जैसा सोचोगे वैसा ही बनेगा संसार। इसीलिये गायत्री मन्त्र में हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान हमारी समझ को, हमारी बुद्धि को अपनी ओर ले चल। ऐसी कृपा कर, कि तेरा ही प्यार हमारे हृदय में हो, तेरा ही स्मरण, तेरा ही चिन्तन और वर्णन की इच्छा

विचार की शक्ति से क्या कुछ होता है?—इसका एक दृष्टांत महाशय मार्टन ने अपनी पुस्तक "Peace, Power and Plenty में लिखा है कि Peace, Power& Plenty के अर्थ शान्ति, शक्ति और सम्पति हैं। एक बूढ़े पादरी का वर्णन किया है उसमें। उसके वास्तविक दांत निकल चुके थे। कृत्रिम दांतों का पूरा जबाड़ा उसके मुंह में रहता था। रात के समय सोने से पहले वह दांतो को एक गिलास या प्याले में रख देता। प्रातः फिर से अपने मुंह में लगा लेता। एक दिन प्रातः ही पादरी साहब उठे तो पेट में कुछ पीड़ा हुई। स्वभाव के अनुसार उसने प्याले की ओर हाथ बढ़ाया कि दांतों को मुंह में लगाले।। किन्तु दाँत वहाँ थे नहीं। पादरी साहब को ध्यान आया कि रात के समय दांतों को मुंह से निकालना भूल गया, वे पेट के अन्दर चले गये। उनके कारण ही पेट में पीड़ा होती है। इस विचार

के आने पर ही पीड़ा बढ़ने लगीं। पादरी साहब चिल्लाने लगे। साथ वाले कमरे से दौड़ती हुई उनकी पत्नी आई, बोली- 'क्या हुआ' ? पादरी साहब कराहते हुए बोले—'रात को मैं दाँत बाहर रखना भूल गया, वे चले गये हैं पेट में। अब वे मेरी आतों को काटे डालते हैं। मैं मरा जाता हूँ।' पत्नी ने घबरा कर डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने सारी बात सुनकर कहा 'यह तो सर्जन का केस है। पादरी साहब को हस्पताल में ले जावो। वहाँ जाकर आपरेशन कराओ। तभीं एँम्बूलैन्स गाड़ी आई रोते और चिल्लाते हुए पादरी साहब हस्पताल पहुंचे। हस्पताल के डाक्टरों ने सारी बात सुन कर कहा—'साहब ! इतने बड़े दाँत गले के अन्दर कैसे गये ? यह तो केवल मनुष्य का गला है, हाथी का गला तो नहीं।' पादरी साहब ने कराहते हुए कहा— 'आप क्या जानें ? पीड़ा मुझे हो रही है। और आप उपहास कर रहे हैं।'

'जिस तन लागे, सो तन जाने, को जाने पीर पराई।'

डाक्टरों ने कहा--'अच्छा भाई ! आपरेशन करके देखते हैं। आपरेशन की कोठरी में ले जाकर पादरी साहब को लेटा दिया सारे शल्य-यंत्र (चीर फाड़ के औजार) तैयार कर लिये गये, क्लोरोफार्म मंगा लिया गया। किन्तु इससे पहले कि उस की डाट खोली जाती और पादरी साहब को क्लोरोफार्म सुंघाया जाता। हस्पताल का एक चपरासी दौड़ता हुआ आपरेशन के कमरे में आया। बोला कि यह तार आया है। डाक्टर ने तार खोल कर पढ़ा पादरी साहब की पत्नी ने भेजा था और अपने पति के नाम लिखा था— 'तुम्हारे दाँत बिल्ली उठाकर ले गईं थीं चौथे कमरे में मिल गये हैं।' पादरी साहब ने तार देखा तो बोले—'[illegible] इसी कारण से पीड़ा कम हो गई। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़ा होती ही नहीं।'

मेरी माँ ! यह बात तुम्हें इसीलिये सुना ईकि व्यर्थ चिन्ता न करो, व्यर्थ में ही अपने लिये दुःख उत्पन्न न करो। प्राय: ये चिन्ताएँ निरर्थक होतीं हैं और सबसे अधिक इन माताओं को होती हैं। लड़की पैदा होने के साथ ही ये चिन्ता करने लगती हैं कि लड़की बड़ी होगी, तो उसका विवाह करना पड़ेगा ज्ञात नहीं कि कैसा पति मिलेगा। यदि मिल भी गया तो पता नहीं कि निर्वाह भी होगा कि नही। पता नहीं सास कैसी होगी, नन्द कैसी होगी, जेठानी कैसी होगी ? हे मेरे भगवान ! कोई अन्त है इन चिन्ताओं का ? व्यर्थ की चिन्तायें, जिनके न सिर न पैर दुःखों का एक संसार हम अपने लिये उत्पन्न कर लेते हैं।

ये सब बातें आपको गायत्री मन्त्र के 'भुव.' शब्द' के विषय में कह रहा हूँ। 'भुवः' का अर्थ है 'दुःख विनाशक'। हम ईश्वर को यदि दुःख विनाशक कहते हैं, उससे दुःखों के नाश करने की प्रार्थना करते हैं, तो हमारा भी तो कर्तव्य है कि व्यर्थ में दुःख उत्पन्न न करें। मेरा भी तो कर्तव्य है कि दूसरों के दुःख का निवारण करूँ। सब के दुःखों को दूर नहीं कर सकता तो कुछ न कुछ लोगों के दुःखों को तो दूर कर दूं। यही गायत्री मंत्र का जाप करना है। यदि तू प्रतिदिन यह देखना चाहे कि क्या मैं भी किसी के दुःखों का निवारक हूँ या नहीं। मेरे कारण, मेरी बुद्धि के कारण, मेरे हृदय के कारण किसी को दुःख तो नहीं होता, किसी को सुख मिलता है या नहीं, तो केवल गवैये और भाट की तरह परमात्मा के गुण-वर्णन करने से कुछ होगा नहीं। उसके गुणों का कुछ न कुछ भाग हमें अपने अन्दर धारण करने का यत्न भी करना चाहिये। प्रतिदिन अपने आप से पूछना चाहिए—

'कभी इमदाद दी तुमने, किसी बेकस बिचारे को।
[illegible] दिया कुछ तूने, मुफलिस के गुजारे को।

तसल्ली दी कभी तूने किसी आफ़त के मारे को।
कभी तूने सहारा भी दिया है बेसहारे को॥
शरीक दर्दे ग़म होकर खबर ली बे नवाओं की।
लगी है चोट भी दिल पर सदा सुनकर गदाओं की॥

प्रत्येक दिन इस प्रकार सोचना चाहिए। इस प्रकार करोगे तो भूःभुवः स्वः कहने से मन में एक अपार शान्ति जागृत हो जायेगी। एक शक्ति का जन्म होगा। अपने आप को जैसे कोई Hypnotyse कर लेता है। ऐसी दशा उत्पन्न होगी। इस दशा में जो भी प्रार्थना तुम करोगे वह स्वीकार होगी।

अब तीसरे शब्द स्वः को देखिये। स्वः का अर्थ है सुखों को देने वाला परन्तु सुख तो उचित शब्द नहीं है। परमात्मा केवल सुख को नहीं, आनंद को देता है। सुख और आनंद दोनों विभिन्न हैं। सुख अल्पकाल के लिए रहता है, फिर समाप्त हो जाता है। आनन्द वह सुख है जो कभी नहीं समाप्त होता। इस लिये स्वः का अर्थ है आनंद को देने वाला। और आनंद ही वह वस्तु है जिसकी मेरे और आपके पास कमी है।

आत्मा सत् चित है, आनंद उसके पास है नहीं। केवल परमात्मा ही सत्, चित् और आनंद है। आत्मा के सकल संघर्ष इस आनंद के लिए हैं। लोग धन चाहते हैं। सम्पत्ति चाहते हैं। सम्मान,, शक्ति, शासन, सन्तान, मोटर हाथी, घोड़े, गाड़ियाँ सब कुछ केवल एक बात के लिये चाहते हैं, आनन्द के लिए। परन्तु आनंद किसी दुकान पर तो मिलता नहीं। कहीं भी चले जाओ। कनाट प्लेस, गोल मार्कीट, बंगाली मार्केट, चाँदनी चौक, बहुत सो दुकानें वहां हैं बहुत सी वस्तुयें वहाँ मिलती हैं। यहां ऊन मिलती है। यहां मिठाइयां मिलती हैं। फर्नीचर मिलता है। औषधियाँ मिलती हैं। यहाँ कपड़े मिलते हैं। जूते मिलते हैं। किन्तु किसी दुकान पर यह तो नहीं लिखा कि यहाँ आनन्द

मिलता है। किसी भी दुकान पर यह बोर्ड नहीं लिखा कि हम आनन्द बेचते हैं।

(स्वामी जी जिन दिनों गायत्री के विषय में यह कथा कर रहे थे। उन दिनों में नई दिल्ली में इर्विन रोड पर श्री पी० एन० बजाज जी के यहां निवास कर रहे थे एक देवी ने कहा, 'स्वामी जी ! आनन्द बजाज के यहाँ मिलता है प्रातः काल। 'स्वामी जी हंसकर वोले 'हां वहां मिलता है।")

जहां मिलता है आनन्द, वहीं से मिल सकता है हलवाई की दुकान पर जाकर यदि आप कहें कि मैं स्वीटर बुनने के लिए ऊन खरीदने आई हूँ। तो हलवाई समझेगा कि रात्रि को पागल खाने का द्वार खुला रह गया है। वहीं से ये देवी जी आई हैं। घर में किसी को मलेरिया हो गया। तब उसकी औषधि को आप मिठाईयों की दुकान पर खोज नहीं करते। फिर आनन्द को इस संसार में कहां ढूंढते फिरते हो। चाहते हो मक्खन, विलोते हो पानी अरे इस प्रकार मक्खन कभी मिलेगा नहीं। आनन्द केवल भगवान के पास है। संसार में किसी अन्य के पास नहीं।

समझाने के लिए एक कथा कहता हूँ। एक कुत्ते की कहानी। कुत्ता कई दिनों का भूखा था। खाना खोजता फिरता था। चलते चलते वह एक नदी के पास पहुँचा तट पर एक वृक्ष था वृक्ष पर पत्ते नहीं थे। केवल शाखाएं थीं उनमें से एक शाखा पर एक रोटी लटक रही थी। वृक्ष का और रोटी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था। कुत्ते ने पानी की ओर देखा, समझा सामने रोटी है। उसमें छलाँग लगा दी। पानी हिला तो रोटी परे जाती प्रतीत हुई। वह और आगे बढ़ा तो रोटी और आगे जाती हुई विदित हुई इस प्रकार वह वार बार आगे बढ़ता, बार-बार रोटी आगे बढ़ जाती। अन्त में वह मझधार में पहुँचा, डूबा, समाप्त हो गया।

अरे मनुष्य ! तू भी तो भूखा फिरता है। जन्म-जन्म से आनन्द की प्यास तेरे चित में है। इसी को खोजता फिरता है। तूने सोचा जिसके पास धन है वह सुखी है और मार दी पानी में छलाँग किन्तु आनन्द तो मिला नहीं आनन्द को रोटी और आगे हो गई। रणवीर जी ने 'मिलाप' में एक बार अमरीका के लगभग एक दर्जन करोड़पतियों का वर्णन किया था। इनमें से कोई पागल होकर मरा, कोई जेल खाने में किसी ने आत्म हत्या करली, कोई रोगों का शिकार रहो गया, किसी का दिवाला निकला, कोई बध कर दिया गया, किसी को भी आनन्द मिला नहीं, क्योंकि धन में आनन्द तो है नहीं। तूने सोचा कि विवाह में सुख है, पकी पकाई रोटी मिल जाती है, सुख और शांति मिल जाते हैं। लगादी छलांग विवाह के जल में किन्तु सुख तो मिला नहीं। आनन्द की रोटी और आगे हो गई। तूने सोचा आनन्द सन्मान में है। तूने लगादी छलाँग। पानी फिर हिल गया। रोटी और आगे गई इस प्रकार मान-सम्मान में, शासन में, शक्ति में मकान में सम्पति में कही भी आनन्द नहीं। छलांग लगाना चाहते हो तो लगाओ किन्तु आनन्द की रोटी मिलेगी नही। कुत्ते में यदि बुद्धि होती तो वह पानी में छलाँग लगाने के स्थान पर ऊपर की ओर निहारता, वृक्ष पर चढ़ने का यत्न करता। रोटी मिल जाती।

ऐ मनुष्य ? आनन्द की रोटी नीचे नहीं है, वृक्ष के ऊपर है। यह रीढ की हड्डी इस वृक्ष का तना है इसका सहारा लेकर ऊपर चल। ब्रह्म-रन्ध्र में पहुँच, वहाँ है आनन्द। उपर चढ़ना कठिन है अवश्य, किन्तु ऊपर चढ़े बिना आनन्द की रोटी नहीं मिलती आनन्द की इच्छा है तो ऊपर चढ़ो' नीचे मत गिरो। क्योंकि सुख को आनन्द को देने वाला केवल परमात्मा है। वह भूः है प्राणों का आधार, 'भुवः' है दुःखों का नाश करने वाला 'स्वः'

आनन्द को देने वाला है।

यह है गायत्री मन्त्र के इन तीन शब्दों का अर्थ। इनके साथ एक और शब्द है 'ओ३म्'। इसके अर्थ मैं बता नहीं सकता, क्योंकि इसके अर्थों का कोई अन्त नहीं। बड़े बडे योगी और ऋषि भी इसका पार नहीं पा सकते। यह महामन्त्र है गायत्री मन्त्र से भी बड़ा। योगी लोग जब इस मन्त्र के विषय में विचार करने लगते हैं, जब वे इसके अन्दर पहुँचते हैं, तो अपने आपको भूल जाते हैं। तब कोई बताए कैसे कि यह ओ३म्' है क्या? एक असीम सागर है यह, अनन्त है, निःसीम है, नेति है। कोई मनुष्य समुद्र के पास एक कमंडल लेकर पहुँच भी जाय, तो समुद्र को तो अपने पास नहीं ला सकता इतना ही जल लाता है, जितना कमंडल में आता है। 'ओ३म्' की पूरी बात कोई जान नहीं सका। जान भी नहीं सकता। मैं भी इस समुद्र से एक कमंडल ले आया हूँ, किन्तु यह कमंडल समुद्र तो है नहीं। समुद्र के विषय में तो एक ही बात कही जा सकती है—"नेति-नेति।" इस वार का पार नहीं है। अतः इतना ही समझिये कि 'ओ३म्' का अभिप्राय है 'रक्षा करने वाला।' वैसे अनन्त अर्थ है। यह वह पदार्थ है जिसके बिना किसी का काम नहीं चला। वेदों में उपनिषदों में, गुरु ग्रन्थों में, पुराणों में, यहां तक कि तन्त्र शास्त्रों में भी 'ओ३म्' के बिना कोई कार्य नहीं हुआ। तन्त्र, वालों ने अपने अनेक मन्त्र बना डाले, किन्तु 'ओ३म' के साथ का मन्त्र इनको भी नहीं मिला। इसको इन्होंने ज्यों का त्यों अपने तन्त्रों के साथ जोड़ दिया।

भगवान् बुद्ध ईश्वर को नहीं मानते थे, किन्तु 'ओ३म्' के बिना इनका भी कार्य नहीं चला। गंगोत्री के रास्ते में 'वृषल' नाम का एक गांव है। एक छोटा सा बुद्ध मन्दिर वहां बना है। इसकी एक-एक ईंट पर 'ओ३म् मणिपद्मने हूंम' लिखा है। श्री

गुरु नानकदेव जी महाराज ने अपनी वाणी का आह्वान 'एक ओंकार' से किया है ! गुरुजी की वाणी में आता है—

हरि जो सदा ध्याये तू गरुमुख एक ओंकार।
ओंकार ब्रह्मा उत्पत् ओंकार वेद निर्मायें॥
जलथल महीथल पूर्या स्वामी विसर्जन हार।
अनेक भाँति हुई पसरिया नानक इक ओंकार॥

गोपथ ब्राह्मण के एक ऋषि ने आदेश दिया है कि आत्मा के दुःखों की चिकित्सा ओ३म् है। आत्मा के मोक्ष का द्वार ओ३म् है। ओ३म् की धुन से एक महान् झंकार उत्पन्न होती है। वेद ने उसको आत्मा का सहारा कहा है। ओ३म् के साथ उन तीन शब्दों भूः,भुवः, स्वः का अर्थ हुआ--रक्षा करने वाले,प्राण प्रिय, दुःखों का नाश करने वाले और सुखों को देने वाले भगवान्। गायत्री मन्त्र के शेष अर्थों पर अगली वार विचार करेंगे।

"ओ३म् शुभम्"

चौथा दिन

प्यारी माताओं तथा सज्जनों !

घूंघट के पट खोल पिया मिलेंगे।

सभी लोग चाहते हैं कि घूंघट के पट खुल जाये। सभी लोग चाहते हैं कि पिया मिल जायें, परन्तु प्रयत्न किये बिना तो यह पट खुलते नहीं। गायत्री मन्त्र से खुलते हैं। गायत्री वह महामन्त्र है जो पट खोल देता है। गायत्री ही दुःखी मनुष्य को उस प्रेमी के समक्ष ले जाकर खड़ा कर देती है, जो परमानन्द और परम शक्ति है। अब से पूर्व मैंने आपको 'ओ३म् भूः भुवः, स्वः' इन चार शब्दों के अर्थ बताये आज शेष शब्दों के अर्थ बताने से पहले गायत्री की महिमा बताना चाहता हूँ। देवी भागवत का बड़ा मान है। देवी भागवत के बारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय में गायत्री मन्त्र के विषय में जो कुछ लिखा है, वह आपको सुनाता हूं। देवी भागवत के शब्द हैं 'विष्णु की उपासना नित्य और सनातन नहीं। वेद में विष्णु की उपासना का उल्लेख कहीं नहीं आता। इसलिये विष्णु की दीक्षा सनातन नहीं। शिव की उपासना भी नित्य नहीं। नित्य और सनातन यदि है तो केवल गायत्री की ही उपासना। सभी वेदों और शास्त्रों में इसी गायत्री की उपासना कही गई है। गायत्री वह महामन्त्र है कि जिसके बिना ब्राह्मण का पतन हो जाता है। गायत्री की उपासना करने से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मुक्ति मिलती है। इसी से मोक्ष होता है। मनु महाराज ने कहा हैं कि जो गायत्री की उपासना करता है, उसे फिर और किसी उपासना की आवश्यकता नहीं रहती। इससे आत्मा के कपाट खुल जाते हैं"

उन शब्दों के आधार पर मैं कहता हूँ कि गायत्री के जाप से गायत्री की उपासना से घूंघट के पट खुल जाते हैं।

एक बार जब शिवजी महाराज माता पार्वती के साथ कैलाश में घूमते-फिरते थे, तो भगवती पार्वती ने उससे पूछा, "हे देव। आप किस योग की उपासना करते हैं ? जिससे आपको परम सिद्धि प्राप्त हुई ?" महाराज शिव संसार के आदि योगी थे। योग के सभी रहस्यों से वे भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने जो उत्तर दिया, उसे सुनो ! शिव महाराज ने कहा—"गायत्री वेद माता है और पृथ्वी की सबसे पहली और सबसे बड़ी शक्ति है। वह संसार की माता है। मैं उसी की उपासना करता हूँ। वह संसार की माता है। मैं उसी की उपासना करता हूं। विद्वानों ने सारे योग के साधनों का मूलाधार गायत्री को स्वीकार किया है। गायत्री भूलोक की कामधेनु है। उससे सब कुछ प्राप्त होता है।"

यह है गायत्री की महिमा। बाद में लोगों ने जिसे भगवान् कहा, योगेश्वर और योगीराज कहा, जो योग विद्या के सबसे पहले प्रचारक थे। उन्होंने भी कहा—"गायत्री ही पृथ्वी की सबसे पहली और सबसे बड़ी शक्ति है,, और आगे चल कर पार्वती को सम्बोधित करके उन्होंने कहा —',प्रिये ! विद्वानों ने योग की सभी क्रियाओं के लिये गायत्री ही को आधार माना है। गायत्री से आठों चक्र खुलते हैं:—(१)मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान(३)मणि-पूरक (४) अनाहत (५) मन (६) विशुद्धि (७) आज्ञा चक्र (८) ब्रह्मरन्ध्र।

इन सब के नीचे वह शक्ति सर्पिणी की भाँति कुण्डल मार कर बैठी है जिसे कुण्डलिनी कहते हैं ? सर्प जिस प्रकार बैठता है, उसी प्रकार तीन कुण्डल मार कर यह महा शक्ति मूलाधार में सोई हुई है। रीढ की हड्डी जहाँ नीचे पहुँच कर अन्त को प्राप्त

होती है, वहां अपने मुँह से सुषुम्ना को पकड़े बैठी है। इसका मुंह खुल जाये तो योग के लिए कल्याण का मार्ग खुल जाता है। किन्तु कैसे खुले उसका मुंह ? कौन कहे उस विद्यु त या सर्पिणी से कि खोल अपने मुंह को तथा जाग और योग की महाशक्ति दे दे; जिससे ऊपर उठने और ब्रह्मरन्ध्र में चमकती हुई विशाल ज्योति का दर्शन करने के योग्य हो जावें। शिव जी ने पार्वती जी से कहा, गायत्री के जाप से, गायत्री की उपासना से उस कुण्डलिनी का मुंह खुल जाता है। और फिर एक एक करके आठों चक्र खुलने लगते हैं। इसी लिए शास्त्र ने गायत्री को पृथ्वी की कामधेनु कहा है। कामधेनु और कल्पवृक्ष में ऐसा विश्वास किया जाता है कि उनसे जो भी मांगो; वह मिल जायेगा। जो भी इच्छा करो, वह पूरी हो जायेगी, यह तो काल्पनिक बात है, किन्तु शास्त्रों ने गायत्री मन्त्र को पृथ्वी की, इस संसार की कामधेनु कहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु उससे प्राप्त होती है। वह वेद माता और संसार माता है। भगवान शिव और माता पार्वती का जो सम्वाद मैं आपको सुना रहा हूँ उसी में आगे चल कर शंकर महाराज ने कहा, "कलयुग में हे पार्वती ! मनुष्य के शरीर में पृथ्वी तत्व प्रधान होता है। तुम तो जानती हो कि उससे पूर्व के युगों में मनुष्य के शरीर में अधिक तत्व नहीं होता था, इसलिये कलियुग के मनुष्य को वह सिद्धि नहीं मिलती जो पूर्व युगों के मनुष्यों को मिलती है।" किन्तु यह तो बहुत चिन्ता का विषय है ईश्वर ने यदि कलियुग के मनुष्य को सिद्धि प्राप्त करने के लिये बनाया ही नहीं। यदि उसने उसमें पृथ्वी तत्व को ही प्रधान कर दिया है तब यह सिद्धि मिलेगी कैसे ? पार्वती ने घबड़ा कर कहा, "महाराज तब कलयुग के मनुष्यों का उद्धार कैसे होगा ?" शंकर महाराज मुस्करा कर बोले—घबड़ाओ नहीं पार्वती ! गायत्री ही वह साधन है

जिसको अपना कर, जाप करके कलयुग का मनुष्य भी सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। जो गायत्री को अपनी माता मान कर, उसकी गोद में जाकर अपने आपको उनके चरणों पर अर्पण कर देता है, उसे वे सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं जो कि उससे पहले युगों के मनुष्यों को सूक्ष्म तत्वों की प्रधानता के कारण प्राप्तहोती थी।

गायत्री परम तप है। गायत्री परम योग है। वह परम साधन और परम ध्यान है। वह सिद्धियों की माता है। उससे बढ़ कर संसार में और कुछ नही।

यह है गायत्री की महिमा, जो गायत्री मन्त्र में गायन की गई। किन्तु केवल इतना ही नहीं। जितने भी योगी मुनि हुए हैं, उन्होंने भी मुक्त कण्ठ से गायत्री को बड़ी महिमा वाला बताया है। विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट, भारद्वाज सबने गायत्री की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है " उससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है।" और तो और स्वयं महर्षि चरक ने जिसने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की, अपने ग्रंथ में कहा, "जो स्त्री-पुरुष एक वर्ष तक आंवले का रस पीकर प्रतिदिन प्रातःकाल गायत्री का जाप करे, उसकी आयु निःसंदेह ११६ (एक सौ सोलह) वर्ष की होती है।"

देखो मेरी माँ ! कितनासरल नुक्सा है यह, आँवले का रस और गायत्री का जाप। फिर न किसी डाक्टर की आवश्यकता, न वैद्य की, न पेन्सलीन की, नकोरोमाईसीन की। परन्तु प्राचीन संतों और विद्वानों से हट कर आजकल के सन्तों और महात्माओं को देखो, तो वे भी गायत्री के गुणगान करते हुए मिलेंगे। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, श्री अरविंद घोष, श्री रामकृष्ण परम हंस ,स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विरजानन्द, स्वामी दयानन्द, जगत् गुरुशंकराचार्य सबने एक स्वर से गायत्री

की महिमा का वर्णन किया है। एक-एक करके उनकी बात मैं आपको सुनाता हूँ।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं, गायत्री का जाप करने से शक्ति प्राप्त होती है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, गायत्री सद्-बुद्धि देती है परमात्मा से यदि कोई तत्व मेल कराता-है तो वह है सद्बुद्धि। जिसकी बुद्धि ठीक हो जाय उसके सभी कार्य ठीक होने लगते हैं।

महाकवि टैगोर कहते हैं, "भारत को जगाने वाला, यह सीधा सा महान मंत्र है। गायत्री मंत्र से अधिक सुन्दर और कोई भी पदार्थ है यह मैंने आज तक नहीं देखा, इसके पहले चार शब्दों का उच्चारण करता हुआ 'ओ३म् भूः, भुवः स्वः' कहता हुआ भक्त यह अनुभव करता है जैसे सारा जगत्, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा घर है। लोक और परलोक इस घर की भीतें हैं। ऐसा विदित होता है जैसे वह सूर्य और चन्द्र, नक्षत्रों और ग्रहों के मध्य खड़ा है। प्रत्येक ओर ज्योतियां नाच रही हैं। प्रकाश की नदियां बह रही हैं! और उन सब को सब नदियों के साथ मेरा सम्बंध है। गायत्री मंत्र का जाप करने वाले को यह अनुभव करना चाहिए कि वह पृथ्वी से ऊपर उठ कर अनंत आकाश में अनंत नक्षत्रों के बीच खड़ा है। वहां पहुँच कर उसे गायत्री का उच्चारण करना चाहिए। ब्रह्म का ध्यान करने की यह प्राचीन विधि सर्वोत्तम है। इससे अधिक उत्तम और कोई योगप्रणाली नहीं। इस विधि को ग्रहण करके मनुष्य सदा के लिए भगवान् से अपना सम्बंध स्थापित कर लेता है। किसी अन्य विधि से यह बात नहीं होती।"

लोकमान्य तिलक कहते हैं, 'यदि कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर जाना हो तो गायत्री मन्त्र की उपासना करो। गायत्री मन्त्र के जाप से पाप का मैल दूर होता है। मनुष्य को यह

प्रेरणा मिलती है कि वह ईश्वर के समीप किस प्रकार पहुँच सकता है ?

पूज्यपाद पंडित मदन मोहन मालवीय कहते हैं कि "गायत्री में मनुष्य को ईश्वर विश्वासी बनाने की महान् शक्ति है। गायत्रीं मंत्र जहां आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाता है और उसका दर्शन करा देता है, वहां संसार के सकल पदार्थ भी देता है। इससे अधिक शक्तिशाली मन्त्र मैंने कोई देखा नहीं।"

महात्मा गाँधी प्रति दिन गायत्री जाप करते थे। इस जाप के विषय में वे लिखते हैं—"मन को लगाकर और चित्त को शान्त करके गायत्री मन्त्र का जाप किया जाये, तो प्रत्येक प्रकार के संकटों का विनाश होता है। आत्मोन्नति के लिये यह मन्त्र अत्यन्त लाभदायक है।"

डा० सर राधा कृष्णन् कहते हैं—गायत्री मनुष्य को फिर से नया जीवन देने वाली, अनुपम प्रार्थना है।" इसी प्रकार जगद्-गुरु शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, स्वामी विरजानन्द और दूसरे सभी महात्माओं ने गायत्री की अपार महिमा का वर्णन किया है। गायत्री की महिमा गाते हुए वे किसी भी समय थकते नहीं।

किन्तु ये सब बातें जो मैंने आपको सुनाई ये तो पुरानी बातें हैं। इन्हें सुनने के बाद चित्त में आयेगा कि गायत्री की महिमा महान् है। बड़े महत्त्व की वस्तु है, किन्तु क्या आजकल भी कोई ऐसा मनुष्य है जिसने गायत्री से लाभ उठाया ? मेरा उत्तर है कि ऐसा मनुष्य है जो आपके सामने बैठा है। गायत्री का वर्णन करते ही इस शरीर की कहानी मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। छोटी अवस्था में यह शरीर जलालपुर जट्टां में था। एक छोटे से गांव में जो अब पाकिस्तान में यह शरीर बना=मैं तो समस्त वसुधा का निवासी हूँ। समस्त वसुधा ही मेरा घर है, किन्तु

इस शरीर का घर इस गांव में था। गांव छोटा था, परन्तु व्यापार तथा शिल्प के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्व का। गांधी जी के खादी प्रचार से बहुत पहले खादी वहां बहुत बनती थी। इसे गुजराती कपड़ा कहा जाता था और दूर-दूर तक यह कपड़ा बिकने को जाता था। अतः पहले दिन से ही इस शरीर को स्वदेशी कपड़ा पहनने को मिला। इसके बाद कभी विदेशी कपड़ा पहना नहीं। बचपन की बात है मैं छठी या सातवीं श्रेणी में पढ़ता था और बहुत ही बुद्धू था, कुछ नहीं आता था। मैं स्कूल के अन्दर पहली घंटी में 'Stand up on the bench' होता और फिर दूसरी, तीसरी, चौथी घंटी जब तक स्कूल ही बन्द न हो जाय तब तक बैंच पर ही खड़ा रहता। कक्षा का मानीटर चपत मार-मार कर मेरे गाल लाल कर देता। घर में आता तो पिता जी मारते, कहते तू सर्वथा अयोग्य है, किसी काम का नहीं। मैं रो-रो कर कहता—"पिता जी बहुत ध्यान पूर्वक पढ़ता हूँ मैं। किन्तु क्या करूं जो पढ़ता हूँ वह याद नहीं रहता।" वे कहते —"तू पढ़ता ही नहीं। तू सर्वथा निकम्मा है मूर्ख है।" इस दैनिक अपमान से तथा इस दैनिक मार से इतना दुःखी हुआ मैं कि उस छोटी सी आयु में आत्म हत्या करने की इच्छा जाग उठी। जीवन की कोई इच्छा न रही। सोचा, दुःख और अपमान के इस जीवन से तो मरना अच्छा है। एक दिन बारह बजे स्कूल से छुट्टी हुई, तो मैं सीधा उस बरसाती नाले पर गया, जो हमारे गांव के साथ बहता था। दुआड़ा कहते थे इसे। वर्षा के दिन थे। नदी भरी हुई थी बाढ़ का पानी तीव्र गति से बह रहा था कि मैंने पुल पर खड़े हो कर छलाँग लगा दी दृढ़ निश्चय कर लिया कि मर जाऊँगा, अब तो जीऊंगा नहीं परन्तु भगवान् को इस शरीर से कुछ काम लेना था। इसलिये यत्न करने पर भी मैं मर न सका। गोते खाता हुआ मूर्छा की अवस्था में कोई दो मील नीचे किनारे

पर जा लगा इस्लामगढ़ के पास। वहाँ के लोगों ने देखा तो कहा—"अरे यह तो मुन्शी गणेशदास का लड़का है," मुझे उठा कर उन्होंने घर में पहुंचा दिया। मरना अभी भाग्य में लिखा नहीं था। परन्तु तभी स्वामी नित्यानन्द जी जलालपुर में आये। हमारे बाग में ठहरे। पिता जी ने आज्ञा दी—"इन्हें रोटी खिलाने तू जाया कर।" यह आज्ञा स्यात् इसलिये की कि मुझ से अधिक अयोग्य तथा निकम्मा व्यक्ति इनके घर में नहीं था मैं प्रतिदिन जाता और उन्हें रोटी खिला आता। एक दिन पिता जी ने कहा--"जा भैंस को पानी पिला ला।" मैं उसे गांव के बाहर उस तालाब के किनारे ले गया; जिसे मुसद्दी वाना कहते थे। भैंस ने पानी पिया। वह पानी पीकर गहरे पानी में चली गई मैं था छोटा। इसे बाहर निकालूं तो कैसे? बहुत चिल्लाया, ढेले मारे तो भैंस तालाब से निकल कर दूसरे किनारे पर जा पहुँची। वहाँ एक जमींदार के खेत में घुस गई। जितनी देर में मैं दूसरी ओर पहुंचा उतनी देर में इसने खेत का कितना ही भाग नष्ट कर दिया। इधर से मैं भागा हुआ गया, उधर से जमींदार आ गया। मुझे पकड़ कर उसने इतना मारा कि हड्डियां दुःखने लगीं। उस दिन मुझे स्कूल में भी मार पड़ी थी। घर आया, तो पिता जी ने क्रोध से कहा—'इतनी देर लगाकर क्यों आया?"और तब उन्होंने भी मारा। मैं आश्चर्य में था प्रार्थना की कि 'हे भगवन् क्या करूं।" आँख ही नहीं हृदय भी रोता था, तभी पिता जी ने कहा—"जा, बाग में स्वामी जी को रोटी दे आ।"

मैं रोटी लेकर स्वामी के पास पहुंचा, उन्हें खाने को कहा, मैं एक ओर उदास और निराश खड़ा रहा। वे देखते रहे। भोजन कर चुके तो बोले—"खुशहाल चंद! क्या बात है? तू आज उदास क्यों है? बहुत दुःखी मालूम होता है तू।"

सहानुभूति की बात सुनकर मेरी आंखों में आंसू आ गये। फूट फूट कर रो उठा मैं। स्वामी जी ने प्यार से मुझे अपनी गोद में बैठा लिया और बोले—बोल तुझे क्या हुआ ? क्यों इतना दुःखी है।" मैंने रोकर सारी कथा उन्हें सुनायी। उन्हें बताया कि यत्न करने पर भी मुझे कुछ याद नहीं होता। मेरी बुद्धि खोटी है। उन्होंने कहा—अरे ! मैं इसकी औषधि बता सकता हूँ। बैठ जा मेरे पास "और एक कागज लेकर उन्होंने उस पर गायत्री मंत्र लिख दिया और बोले—"यह है तेरे रोग की औषधि। जब परिवार के सभी लोग सोये हुये हों तो प्रातः दो तीन बजे उठ कर स्नान करके इसका जाप किया कर।" तब उन्होंने गायत्री मंत्र के अर्थ भी बताये और जो अर्थ उन्होंने उस समय बताया वह आज भी मुझे भूला नहीं।

"हे रक्षक ! प्राण प्यारे ! दुःख विनाशक ! आनन्द दायक ! मैं तेरे सुन्दर दिव्य रूप का ध्यान करता हूँ और तुझे वरता हूँ। अपने आपको तेरे समर्पण करता हूं। मेरी बुद्धि को अपनी ओर ले चल।"

तभी से मैं प्रातः उठने लगा। समय पर उठ सकूं इसलिये बहुत तेज अलार्म वाली एक घड़ी खरीद ली। उठने के बाद भी नींद आती तो बार-बार अपनी आँखो पर छींटें देता परन्तु तभी देखा कि पानी से भी नींद दूर नहीं होती, जाप के लिये बैठता हूं तो थोड़ी देर के बाद नींद आने लगती है। उन दिनों मेरी चोटी बहुत लम्बी थी। पांवो में खड़ाऊ पहनता था पीली धोती पहनता था। पिता जी हम सब भाईयों को इसी ब्रह्मचारी वेष में रखते थे। मैंने सोचा कि चोटी को नीद रोकने के लिये प्रयोग में लाना चाहिये छत के साथ एक रस्सी बाँध दी। जाप के लिए बैठने लगता तो इसका दूसरा किनारा चोटी के साथ बाँध देता, और सब जैसे ही ऊंघ आती सिर होता

नीचे, रस्सी खिंचती ऊपर, तो चोटी तन जाती, नींद खुल जाती और मैं फिर से जाप करने लग जाता। इसी प्रकार ५-६ महीने जाप करते हो गये, तो मैंने इसका प्रभाव देखना प्रारम्भ किया। पहले परीक्षा होती, तीन प्रश्न मिलते तो मेरे तीनों के तीनों अशुद्ध हुआ करते। अब एक प्रश्न ठीक होने लगा। मैं परीक्षा में पास हो गया। अध्यापकों ने कहा—"तूने अवश्य ही किसी की नकल की है। तेरी सफलता की तो आशा न थी।"

मैंने कहा नकल नहीं की मैंने केवल गायत्री मंत्र का जाप किया है। उन्हें संम्भवतः यह बात समझ में नहीं आई, परन्तु उसके बाद मैं प्रत्येक परीक्षामें पास होने लगा। उन्हीं दिनों मैंने एक कविता भी लिखी। मेरे गुरु मास्टर काकाराम जी थे। उन्होंने इस कविता को पढ़ा तो इतने प्रसन्न हुए कि उसी समय जेब से एक पौंड निकाल कर मुझे पारितोषिक रूप में दे दिया। उन दिनों में पौंएड चलते थे पारितोषिक देने के लिये लोग पौंएड का प्रयोग करते थे। मैंने यह बात जाकर पिताजी को सुनाई। उन्हों ने पौंएड देखा, कविता देखी और अपने पास से एक और पौंएड मुझे इनाम दे दिया। इसके कुछ ही मास बाद एक और घटना हुई। आर्यसमाज जलालपुर जट्टाँ का वार्षिक उत्सव था। महात्मा हंसराज जी का एक व्याख्यान इस उत्सव में हुआ। जिस प्रकार मेरा बच्चा रणवीर मेरे व्याख्यान की रिपोर्ट ले रहा है, इसी प्रकार मैं भी महात्मा जी के व्याख्यान की रिपोर्ट लेने लगा। रात को बैठकर सारी रिपोर्ट लिखी। प्रातः ही इसको महात्मा जी के पास ले गया यह पूछने के लिए कि कहीं कोई अशुद्धि तो नहीं हो गई। उन्होंने रिपोर्ट को देखा तो बोले— 'क्या तू शार्टहैण्ड जानता है ?" जी नहीं। शार्टहैण्ड क्या होता है ? मैंने कहा। वे बोले, किसका लड़का

है तू ? मैंने कहा—"आर्यसमाज के मंत्री ला० गणेश दास जी है न, वे मेरे पिता जी हैं।" उसी समय मेरे पिता जी भी उसी स्थान पर आगये। महात्माजी ने पूछा—"मुन्शी जीं! यह आप का लड़का है?" पिता जी ने कहा—"जी।" महात्मा जी बोले--"क्या कराते हो इससे?" पिता जी ने बताया—"यह पढ़ने में बहुत अच्छा नहीं। इसके लिए जुराबें बुनने का कारखाना लगा दिया है।' इन दिनों मैं वस्तुतः जुराबें बुनने का काम करता था। पन्द्रह मशीनें थी मेरे पास पन्द्रह आदमी काम करते थे, किन्तु सब से अधिक जुराबें मैं बुनता था। दूसरों को जुराबें बुनना सिखाता भी था। इसलिए सारे जलालपुर में नौजवान लड़के मुझे उस्ताद जी कह कर बुलाते थे। महात्मा जी ने यह सब कुछ सुना तो कहा—"इस काम के लिए यह लड़का ठीक नहीं मुन्शी जी! इसे मुझको दे दो। मैं इसे उस काम पर लगाऊंगा जिसके यह योग्य है।"

पिता जी ने कहा—"मैं अस्वीकार कैसे कर सकता हूं? यह आपका बच्चा है, जैसे आप चाहें करें।'; इसके बाद कई दिन बीत गये। एक दिन महात्मा जी का पत्र आया कि खुशहालचन्द को लाहौर भेज दो। मैं वहां गया। आर्यगजट में नौकर हुआ, ३०) रुपये मासिक वेतन निश्चित हुआ। गांव में लोगों को पता लगा तो आश्चर्य से बोले—"३०) रुपये माहवार? एक रुपया प्रतिदिन? देखो भाई! मुन्शी जी के पुत्र को, वह बहुत बड़ा व्यक्ति बन गया है।" इन दिनों रणवीर भी कुछ ही मास का था। इतना सा था यह। अब तो बड़ा हो गया है। आर्यगजट में काम करते-करते मैं इसका सम्पादक भी बना। कितने ही वर्ष बीत गए, सन् १९२१ तक आर्यगजट में सम्पादक पद पर कार्य किया। तभी मालावार में मोपला विद्रोह हुआ। यवनों ने अढ़ाई हजार हिन्दुओं को गाजरों से काट डाली। दो हजार हिन्दुओं को

बलात् मुसलमान बना लिया। महात्मा हंसराज जी की आज्ञा से रिलीफ का काम करने के लिए मैं वहां पहुँचा। वहां से लौटा तो प्रतीत हुआ कि देश के पत्र कुछ संवादों को प्रकाशित नहीं करते। विपरीत प्रकार का हिन्दू- मुस्लिम एकता का सिद्धांत बनाकर वे सबको दबा देना चाहते हैं। हिन्दूओं पर कोई अत्याचार भी हो तो उनकी बात कोई छापना नहीं चाहता। मैंने अनुभव किया कि इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकता कभी होगी नहीं। हिन्दू-मुस्लिम एकता आवश्यक है; किंतु यह एकता तब हो सकती है, जब हिन्दू भी इतने ही संगठित तथा शक्तिशाली हों जितने कि मुसलमान हैं। अन्यथा पत्थर और मिट्टी का मिलाप होता नहीं। पत्थर और पत्थर का मेल हो सकता है।

विचार को हृदय में रख कर मैंने मिलाप पत्र (अखबार) का प्रकाशन प्रारम्भ कियां। इसीलिए की देश में मिलाप की हिन्दू-मुस्लिम एकता की, हिंदू और हिंदू मिलाप की, आचरण को उन्नत करने की, सदाचार को प्रोत्साहन देने की, सत्य रक्षा की और न्याय रक्षा की आकांक्षा उत्पन्न की जाये। यह आदर्श लेकर मिलाप जब निकला तो कई लोगों ने कहा कि इस अकेले व्यक्ति से क्या पत्र(अखबार) चलेगा ? एक दो सप्ताह की बात है फिर बन्द हो जायेगा, परन्तु एक दो सप्ताह तो नहीं मिलाप को चलते पूरा एक वर्ष हो गया, तो कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि कहीं से रुपया ले लिया होगा तभी तो पत्र(अखबार) चलाता है। परन्तु यह बात तो ठीक नहीं थी। कभी किसी से कोई रुपया मैंने लिया नहीं। मिलाप यदि चलता था तो किसी के रुपये से नहीं, प्रत्युत ईश्वर की कृपा से। मिलाप सफल हुआ तो इसके बाद हिन्दी-मिलाप भी निकला। लोगों ने कहा—"अब इसका अन्त आ गया है।', किंतु अन्त आया नहीं। हिन्द-मिलाप में लगभग एक लाख रुपया घाटा डाला गया। इतना होते हुए भी चलता

रहा। अब भी चलता है। तब भगवान् की कृपा होने लगी। टाँगे, मोटर-गाडियाँ, गाय, भैंस सभी कुछ आ गया। बेटे हुए, बेटियाँ भी, धन-दौलत, लाखों की सम्पति—यह सब कुछ मिला क्योंकि गायत्री माँ ने कहा है कि मैं सब कुछ देती हूँ---धन-दौलत, बल, कीर्ति सब कुछ! माँ की कृपा से यह सब कुछ मिला। इन्हीं दिनों लाहौर के अन्दर यूनिवर्सिटी हाल में पंजाब के गवर्नर पर गोली चली। चार नवयुवक पकड़े गये। इन पर गवर्नर की हत्या करने की साज़िश का अभियोग चला। रणवीर भी इनमें से एक था। सैशन जज ने फाँसी के दण्ड को आज्ञा सुना दी। तभी एक और दुर्घटना हुई। मैं जोगेन्द्रनगर आर्य-समाज के उत्सव पर गया हुआ था। एक पत्थर से पाँव रपट गया। मैं पहाड से नीचे जा गिरा। रीढ़ की हड्डी टूट गई। घायल हो कर मैं लाहौर पहुँचा। सारा धड़ प्लास्टर में जकड़ दिया गया। एक तख्त पर मुझे लिटा दिया गया। हिलना निषिद्ध था। हिला जाता भी न था। लोग रणवीर को फाँसी की आज्ञा होने के कारण मेरे पास सहानुभूति प्रदर्शन के लिये आने लगे। सीढ़ियों पर चढ़ते समय वे रोना सा मुख बना लेते, वाणी को भारी कर लेते, आँखों में आंसू ले आते, किन्तु जब वे मेरे पास आते तो मैं उन्हें हँसता हुआ मिलता। वे मुझे मुस्कराता हुआ देखते तो आश्चर्य से कहते—"तेरी छाती में हृदय है या पत्थर? बेटे को फाँसी की आज्ञा हो गइ है। स्वयं तख्त पर पड़ा है, फिर भी हँसता है।" तो मैं विश्वास के साथ कहता—सुनिये! यदि मेरा कल्याण इस बात में है कि मेरा बच्चा मेरे साथ न रहे तो वह कभी रहेगा नहीं और यदि मेरा कल्याण इसमें है कि मेरा बच्चा बच जाये तो संसार की कोई शक्ति उसको मुझसे छीन नहीं सकेगी।" लोग रोते थे रणवीर के लिए, परन्तु मैं तो नहीं रोया। एक भी आँसू मेरी आँखों से नहीं निकला। एक दिन स्वामी सत्तदेव जी अनार-

कली में मुझे मिले। वे महाराजा जम्मू-काश्मीर के गुरु थे। मेरे पिता जी के साथ और मेरे साथ उन्हें बहुत प्रेम था। गाड़ी में बैठ कर वे सामने से आ रहे थे। मैंने हँसकर उन्हें नमस्ते की। गाड़ी को रोक कर वे नीचे आगये, बोले—"खुशहालचन्द! तेरा रणवीर अब तेरे पास आया ही समझ।" रणवीर इन दिनों जेल में मृत्यु पर विजय पाने वाले मन्त्र का जाप कर रहा था। मैंने समझा स्वामी जी इस जाप का वर्णन कर रहें हैं या फिर आत्मिक शक्ति से ऐसी बात कह रहें हैं। हँसकर उनसे पूछा—"क्या आप ने ध्यान में ऐसी बात देखी?" वे बोले—"नहीं। तेरा मुख देख कर यह बात समझ में आई। जो इतनी विपत्ति सहकर भी इस प्रकार प्रसन्नचित्त रह सकता है, इस प्रकार हँस सकता है। उसके बेटे को उससे छीन कौन सकता है?" और वह बात ठीक हुई। रणवीर का बाल भी टेढ़ा न हुआ।

परन्तु गायत्री माता केवल लोक तो नहीं देती, परलोक भी देती है। लोक और परलोक दोनों का सुधार करती है। आत्मा को पवित्र करने वाली वह माता आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, सम्पत्ति और ब्रह्म-वर्चस् को देकर ब्रह्मलोक को ले जाती है। इसी लिए कीर्त्ति, धन-सम्पत्ति, सन्तान—बेटे-बेटियाँ, मोटरें, सम्बन्धी आदि सब कुछ देकर इस प्यार भरी गायत्री माँ ने कहा---"मार सबको लात, मेरे साथ आ। मैं ब्रह्मलोक में ले चलूंगी।" सबको छोड़ कर मैं गेरुए वस्त्र पहन कर माँ के दिखाये हुए मार्ग पर चल पड़ा!

आठ नौ वर्ष की उस छोटी सी अवस्था को लेकर सत्तर वर्ष की अवस्था तक—हाँ, सत्तर वर्ष का हो गया है यह शरीर, मैं नहीं, मैं तो आनन्द स्वामी हूँ। आनन्द स्वामी की अवस्था केवल चार वर्ष साढे तीन महीने हुई है आज,—किन्तु शरीर की आयु के इन वर्षों में आठ वर्ष से सत्तर वर्ष तक एक

भी दिन मुझे ऐसा याद नहीं कि जब मैंने गायत्री माँ की गोद में बैठ कर अमृत न पिया हो। यह सारी कहानी मैंने आपको इस लिए सुनाई कि गायत्री की महिमा को आपके सामने रख सकूं। आजकल कलियुग है अवश्य, किन्तु कलियुग में भी गायत्री की उपासना करने से वह सब कुछ मिलता है जो भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को बताया था, शिव ने पार्वती को बताया दूसरे ऋषियों योगियों और महात्माओं ने संसार को बताया था जो जगद्-गुरु शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द ने बताया, जो गांधी और टैगोर ने बताया। लोकमान्य तिलक तथा परमहंस श्री रामकृष्ण ने बताया। वह अशुद्ध नहीं। केवल कहने की बात नही। वह सत्य है, मैंने जीवन में स्वयं अनुभव करके देखा है। मैं कहता हूँ वह सत्य है, सत्य है, सत्य है।

परन्तु इससे पहले कि जाप में सफलता मिले, आवश्यक है कि ईश्वर के जिन गुणों को तुम याद करते हो उन्हें स्वयं भी अपनाने का यत्न करो। तुम यदि उसे ओ३म कहते हो, रक्षक मानते हो तो स्वयं भी किसी की रक्षा करो। तुम 'भूः' कहते हो, प्राणाधार मानते हो तो स्ययं भी किसी के प्राणाधार बनने का यत्न करो। तुम यदि उसे भुवः' कहते हो दुखों का विनाशक समझते हो तो यत्न करो कि तुम स्वयं व्यर्थ में अपने लिये दुःख की उत्पत्ति न करते जाओ। प्रयत्न करो कि दूसरों के दुःख दूर हों। तुम यदि उसे 'स्वः' कहते हो, सुखों का दाता मानते हो तो यत्न करो कि तुम्हारे कारण से दूसरों को भी सुख होवे यह है वास्तविक विधि गायत्री-उपासना कीं। इस परम पुण्य मंत्र के जाप की। मिरासी, और भाट की तरह केवल ईश्वर को उसके गुण न बताते जाओ। उन गुणों को अपने अन्दर धारण करने की कोशिश भी करो।

जाप करने का अभिप्राय यह है कि जिन गुणों को तुम अपने

अन्दर लाना चाहते हो, उन्हें बार-बार याद करो। स्कूलके बच्चे जैसे अपना सबक रटते हैं इस तरह रटो, सोच समझ कर रटो।

कुछ लोग कहते हैं कि क्यों जो ! बार-बार एक ही बात कहने का क्या लाभ है ? एक ही बार ईश्वर को क्यों न कह दें कि हमें सीधे रास्ते से ले चल, हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे।

ऐसे लोगों से मैं पूछता हूँ कि जब किसी आदमी को मलेरिया हो जाये तो क्या तुम एक ही बार उसको कुनीन देकर बस कर देते हो ? क्यों नहीं ऐसा करते कि रोगी को एक बार कुनीन दे दी और इसके बाद उसे छोड़ दिया, चाहे वह मरे या जीये नहीं ऐसा नहीं किया जाता। कूनीन की आवश्यकता तब तक रहती है जब तक मलेरिया के परमाणु शरीर में विद्यमान हैं। बार-बार जिस प्रकार से कुनीन खानी पड़ती है उसी प्रकार आत्मा के ऊपर जमा हुआ पापों का मल जब तक दूर न हो जाये, विषय और विकार के परमाणु जब तक समाप्त न हो जायें, घुंघट के पट जब तक खुल न जायें तब तक जाप करना पड़ता है। बार-बार करना पड़ता है। यह सब कुछ कब तक होगा, हृदय की गांठें कब खुलेंगी, पाप का,अन्धेरा कब दूर होगा इच्छा तथा वासनाओं की अग्नि कब बुझेगी ? यह अपने आप से पूछो प्रत्येक व्यक्ति का रोग भिन्न-भिन्न होता हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य के जाप की संख्या भी भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु जब तक यह अवस्था उत्पन्न न हो जाये, तब तक जाप करना होगा। गायत्री माँ की उपासना करनी होगी। इसको छोड़ कर दूसरा साधन नहीं।

लोहे का गोला होता है न ? इसे आग में डालने से जिस प्रकार वह अग्नि जैसा हो जाता है, इसी प्रकार परमात्मा के गुणों को बार-बार याद करने से इन गुणों को अपने अन्दर धारण करने का यत्न करने से आत्मा भी परमात्मा के सदृश गुणवता

है। उस सुख तथा आनन्दको प्राप्त करता है, जो केवल परमात्मा के पास हैं, किन्तु इससे पहले कि ऐसा हो परमात्माके गुणों को कुछ तो अपनाने का यत्न करो। कुछ-कुछ तो तुम भी वह सब कुछ करो जिसे वह करता है।

यह है गायत्री मन्त्र के उन पहले चार शब्दों की महिमा। इसके बाद उसके तीन भाग होते हैं।"

पहला भाग है—"तत्सवितुर्वरेण्यम्'

दूसरा भाग है—"भर्गोदेवस्य धीमहि"

तीसरा भाग है—"धियो यो नः प्रचोदयात्"।

यह तीन भाग वाला चौबीस अक्षरों वाला गायत्री का मन्त्र है। इसके एक-भाग की महिमा का वर्णन एकादशाक्षी (ग्यारह आंख वाले) मौदगल्य और ग्लाव मैत्रेय के प्रश्नोत्तर में आता है। मौदगल्य को ग्यारह आँख वाला कहा जाता था, तो इसलिये नहीं कि इसके मुख पर दो के स्थान पर ग्यारह आंखे थी किन्तु इसलिये कि योग की शक्तिसे उसने अपने मन में पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पांचकर्मेन्द्रियों और ग्यारहवें मन की आंख को खोल लियाथा इसलिये एकादशाअर्थात ग्यारह आंखोंवाला कहतेथे उसे। ग्लावमैत्रेय प्रश्न करतेहैं औरमौद्गल्य उत्तरदेते हैं। इस प्रश्नोत्तरको पूर्ण रीति से विस्तार पूर्वक कभी फिर सुनाऊंगा। आज केवल इन शब्दों का वर्णन करना चाहता हूं जो पहले और दूसरे भागों में आते हैं। इनमें एक शब्द है—'सविता'। सविता परमात्मा की वह शक्ति है जो सृष्टि को बनाने के लिये सृष्टि से पहले जागती है। इस समय वह सोई हुई प्रकृति को प्रेरणा करके कहती है कि "जाग मुझे सृष्टि की रचना करनी है।" 'सविता' के कितने ही अर्थ शास्त्रों में आते हैं, उत्पन्न करने वाला, जगाने वाला गर्भ में लाने वाला, गर्भ से मुक्ति दिलाने वाला, प्रकट करने वाला, प्रकट हुए को विनाश करने वाला आदि इसके अर्थ

हैं। सब के लिये एक शब्द 'सविता' रखा गया। सविता वह सबसे बड़ी शक्ति है सृष्टि की वह आदि शक्ति है, भगवान की वह महामाया है जिससे यह सब कुछ बन रहा है जिससे यह सब कुछ बनता है। गायत्री मंत्र का देवता भी 'सविता' है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर विराजमान वह लगातार प्रेरणा करता है, बच्चों को भी, बूढ़ों को भी, जो अच्छा काम करते हैं उनको भी। वह सदा ही अन्दर से पुकारता रहता है। सविता भगवान की वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह मनुष्य से बातें करता है।

भगवान का बातें करना कुछ लोगों को बहुत विचित्र सा प्रतीत होगा, विशेषतः उन व्यक्तियों को जो मेरी तरह भगवान को निराकार मानते हैं। शब्द भी तो एक आकार है निराकार में शब्द कैसे हो सकता है ? ऐसा वे पूछते हैं। किंतु महर्षि दयानन्द के इन शब्दों को सुनिये तो मालूम होगा कि भगवान वास्तव में बातें करता है। महर्षि सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में कहते हैं—"और जब आत्मा मन, और मन, इन्द्रियों को किसी काम में लगाता है, जो चोरी आदि बुराईयों या उपकार आदि अच्छी बातों के करने को जिस समय आरम्भ करता है, इस समय जीव की इच्छा और ज्ञान आदि इसी चाहे हुए काम की तरफ झुक जाते हैं, उस समय आत्मा के अन्दर बुरे काम करने में भय,संशय, लज्जा तथा अच्छे काम करने में निर्भयता, विश्वास और आनन्द व उत्साह का उत्थान होता है वह जीव आत्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से हैं।

इस प्रकार परमात्मा भीतर से प्रेरणा करता है। यह ध्वनि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर से उठती है। जो भी सुनना चाहे वह उसको सुन सकता है किन्तु अन्दर की ध्वनि को सुनने के लिये पहले बाहर की ध्वनि को बन्द करना पड़ता है।

एक कमरे में एक सज्जन बैठे थे। दीवार पर घड़ी लगी हुई थी। लगातार चलती हुई वह टकटक कर रही थी। वह सज्जन इसकी टकटक को सुन रहे थे। बाहर गली में ऊंची ध्वनि से बाजे बजने लगे। इन सज्जन को घड़ी को ध्वनि आनी बन्द हो गई। भयभीत होकर उन्होंने लड़के को बुला कर कहा—"देखो तो सम्भवतः यह घड़ी चलनी बन्द हो गई है। इसकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती।" नौकर ने ध्यान से घड़ी को देखा। वास्तविक बात को समझ कर बोला—"घड़ी बन्द नहीं हुई। बाहर की ध्वनि इतनी अधिक है कि इसकी टकटक सुनाई नहीं देती।"

मनुष्य का यह मन एक कमरा है। इसके अन्दर परमात्मा की ध्वनि घड़ी की तरह लगातार टकटक करतीहै, लगातार बोलती है किन्तु बाहरकी इच्छाओं और वासनाओंके जो बाजे हमने बजा रखे हैं उन्होंने इस ध्वनि को दबा दिया है। अन्दर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट बन्द हों।

बाहर के पट बन्द करने से ही घूंघट के पट खुलते हैं, तब प्रियतम प्रभु का दर्शन होता है। तब उनकी ध्वनि सुनाई देती है। यह ध्वनि ही 'सविता' है जो लगातार प्रेरणा करता है, जो आदि शक्ति है, जिसकी प्रेरणा से यह अनन्त प्रकृति जाग उठी। उसकी कृपा हो जाये तो मनुष्य को कल्याण का मार्ग क्यों नहीं मिलेगा? अवश्य मिलेगा। इस शक्ति के लिये कुछ भी असम्भव नहीं, किन्तु इसे सुनना चाहिये। इसे समझना चाहिये।

ओ३म् शम्

पाचवां दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

चार दिन हो गये गायत्री के विषय में कहते हुए। "ओ३म भूर्भुवः स्व." इन चार शब्दों का अर्थ क्या है ? यह आपको बताया। गायत्री के तीन भाग क्या हैं, तीन चरण क्या हैं ? यह भी बताया। अब बात हो रही थी 'सविता' की, जो गायत्री का देवता है और गायत्री मन्त्र में चमकते हुए हीरे की तरह वर्तमान भी है। आज कुछ और कहनेसे पूर्व मैं आपको गायत्रीके अर्थसुनाना चाहता हूं। जो महर्षि दयानन्दजी महाराज ने किये हैं। गायत्री मन्त्र के अर्थ उन्होंने कई स्थानों पर किये हैं और बहुत ही विस्तार से किये हैं, मैं केवल वह संक्षिप्त अर्थ सुनाने लगा हूं जिसको महर्षि ने पंचमहायज्ञविधि में दिया "जो सारे जगत् को पैदा करने वाला और ऐश्वय को देने वाला है, जो सब की आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है, जो ग्रहण करने के सर्वथा योग्य है, जो शुद्ध विज्ञान स्वरूप है उसको हम पूर्ण भक्ति से विश्वास में लाकर अपनी आत्मा में धारण करें, जिससे कि वह सविता, देव, परमेश्वर कृपा करके हमारी बुद्धियों को बुरे कामों से अलग करके सदा अच्छे कामों में लगाता रहे।"

जैसा कि मैंने पहले ही कहा यह 'सविता' शब्द यजुर्वेद में बार-बार आया है। सविता भगवान की वह शक्ति है जो सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति को प्रेरणा करके जगाती है, आज्ञा देती है—"जाग ए मूर्छित प्रकृति, मेरे मानव के कल्याण के लिये जाग,' किन्तु इसी समय तो 'सविता' शक्ति प्रेरणा नहीं करती;

अपितु सर्वदा ही करती है। वह जन्म देने वाली शक्ति है, पालने वाली शक्ति है, नष्ट करने वाली शक्ति है। यह गर्भ में लाने वाली और गर्भ से मुक्ति दिलाने वाली ईश्वर की कृपा से पूर्ण शक्ति है। इस शक्ति के द्वारा परमात्मा मनुष्य को बराबर प्रेरणा करता रहता है। सत्यार्थ प्रकाश के ७ वें तथा ९ वें समुल्लास में महर्षि ने इस प्रेरणा का वर्णन किया है। सातवें समुल्लास की बात आप को पहले सुनाई थी। आज नवें समुल्लास की बात सुनिए। महर्षि कहते हैं—"जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों में, आत्मा मन के साथ मिल कर प्राणों को प्रेरणा कर के अच्छे और बुरे कर्मों में लगता है। तब वह बाहर की ओर देखता है। उसी समय अन्दर आनन्द, उत्साह, निर्भीकता, बुरे कामों से भय, लज्जा पैदा होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की इच्छा है। जो कोई इस शिक्षा पर आचरण करता है, वह मुक्ति से मिलने वाले सुखों को प्राप्त करता है।

परमात्मा की शिक्षा का अभिप्राय है "परमात्मा की वाणी" इस की ओर से की हुई प्रेरणा. ये प्रेरणा सर्वदा प्राप्त होती है। प्रेरणा देने वाली उस शक्ति का नाम ही सविता है। गायत्री मन्त्र का जाप करते समय इस समय इस सविता का ध्यान करना चाहिए। वह महान् शक्ति जो पैदा करती है और पालती है, जो विनाश और मोक्ष दोनों को देने वाली है, जो बराबर प्रेरणा करने वाली है, जो सदा कल्याण की ओर जाने का मार्ग बताती है, बुरे मार्ग पर जाने से रोकती है। उसका ध्यान करना चाहिये।

किन्तु केवल ध्यान करने से सारा काम नहीं बनता भगवान को यदि हम प्रेरणा करने वाली कल्याण की ओर ले जाने वाली शक्ति कहते हैं, तो हमें स्वयं भी दूसरे को कल्याण की ओर जाने की प्रेरणा करनी चाहिए। यदि आपको विदित

है कि गाय का दूध पीने से, दही खाने से पनीर खाने से शरीर को किस प्रकार लाभ पहुँचता है, तो दूसरों को भी यह बात बताइये, । यदि आपके पास किसी रोग को दूर करने की कोई औषध है, तो उसे छुपा कर मत रखिये लोगों को बताइये, जिससे कि उनका कल्याण हो। सविता की उपासना का स्वरूप यह है।

जब तक आर्य जाति इस प्रकार से सविता की उपासना करतीं रही। जब तक वह दूसरों को उनके कल्याण का मार्ग बताती रही, तब तक इस पृथ्वी पर आर्यों का चक्रवर्ती सार्वभौम राज्य रहा। अमरीका, यूरोप, अफ्रीका, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बुलोचिस्तान, ईरान ये सब आप के ध्वज के नीचे रहे। किन्तु जब से हमने दूसरों को प्रेरणा देनीं बन्द कर दीं। जब से हमने अपने आपको सीमित करना आरम्भ किया और अपने ज्ञान को रहस्य बनाना आरम्भ किया, तभी से देश की और जाति की अवनति आरम्भ हुई। आप कहेंगे यह तो राजनीति की बात है गायत्री मंत्र के साथ इसका सम्बन्ध क्या ? किन्तु मैं तो पहले ही कह चुका कि गायत्री लोक और परलोक दोनों का सुधार करती है। राजनीति इस लोक का एक भाग है। गायत्री का जाप और उस की उपासना राजनीति में भी सफलता देती है। यदि यह सफलता चाहते हो तो 'सविता' के रूप को समझकर उसके गुण को अपने अन्दर धारण करो। सविता प्रेरणा करती है, तुम भी करो। आप ने विष्णु भगवान् की प्रतिमा देखी होगी। उनकी चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। यह शङ्ख क्या है ? प्रेरणा की शक्ति, प्रचार करने की भावना, अपने विचारों को फैलाने की इच्छा। यह शंख 'सविता' का एक ठोस रूप है। भगवान की प्रेरणा से प्रकृति जाग उठी थी। आपकी प्रेरणा से भी बहुत कुछ हो सकता है।अतः गायत्री मंत्र में 'सविता' शब्द

के आते ही न केवल महान् प्रेरणा करने वाली शक्ति का ध्यान करो; किन्तु यह भी निश्चय करो कि मुझे भी प्रेरणा करनी है। किसी का भी जितना भी कल्याण मुझ से हो सकता है; मुझे वह करना है। सविता के पश्चात् दूसरा शब्द है 'वरेण्यम्', इसका अर्थ है 'वरण करना' किसी को अपना लेना, उसे स्वीकार कर लेना और अपने आपको उसके अर्पण कर देना।

भक्त इस शब्द को बोलता हुआ कहता है—"हे सविता! हे सर्व प्रेरक! सोई हुई प्रकृति को आदि सृष्टि में जगाने वाले! सारे संसार को चलाने वाले! मैं तो यत्न करते-करते थक गया। अब शक्ति नहीं, बल नहीं। एक भी और पग मुझ से उठाया नहीं जाता। हार कर, थक कर मैं तुम्हारे चरणों में आ गिरा हूँ। हे सविता देव! विशाल संसार की सृष्टि करते! तुझे यदि थकान नहीं हुई, यदि केवल एक संकेत से तूने इस अपार सृष्टि की रचना कर दी, तो क्या मेरे लिए थोड़ा सा प्रयास नहीं कर सकता? तेने सोई हुई अपार प्रकृति को जगा दिया भगवान्! तो फिर मेरे लिये क्यों सो गया? कब मुझे अपने मार्ग का अनुगामी करेगा? कब प्रेरणा करेगा मुझे? कब करेगा ऐ स्वामी! ऐ प्रभु! ऐ प्रीतम प्यारे'

और यह सृष्टि कितनी विशाल है? मेरी मां! मेरी बच्ची! इस का कभी ध्यान करके देखो, हिमालय की एक कन्द्रा में ही कितनी जड़ी बूटियाँ और वनस्पतियाँ है? इसको कभी कोई गिनती नहीं कर सका, फिर सारे हिमालय पर क्या कुछ है? इसकी गिनती कौन करेगा? परन्तु यह हिमालय तो संसार का एक छोटा सा भाग है। इतने बड़े समुद्र हैं पृथ्वी पर जिनमें कई-कई 'हिमालय डूब सकते हैं। इतनी नदियां हैं। पृथ्वी को बने पौने दो अरब वर्ष बीत जाने के बाद आज भी कितने ही स्थल ऐसे हैं जहाँ मनुष्य पहुँच नहीं पाया; कम से कम आज का मनुष्य तो

पहुंच नहीं पाया; परन्तु यह विशाल पृथ्वी सूर्य की तुलना में एक तुच्छ सा गोला है, तेरह लाख गुणा बड़ा है यह तपने वाला सूर्य हमारी पृथ्वी से तेरह लाख पृथ्वी इसमें समा सकती हैं। बहुत बड़ा हुआ न सूर्य! है न मेरी बच्ची! परन्तु सूर्य से भी बड़ा है अगस्त्य तारा। इस विशाल सूर्य से, जिसमें तेरह लाख पृथ्वियाँ समा सकती हैं अगस्त्य तारा एक करोड़ गुणा बड़ा है। परंतु अगस्त्य से भी बड़ा है एक और तारा, जिसे ज्येष्ठा कहते हैं। इस से भी बड़ा और कोई परम ज्येष्ठ है या नहीं, इसका क्या पता? इतनी विशाल है यह सृष्टि। है कोई अन्त इस विशालता का? है कोई सीमा इस सृष्टि की? जिस ने अपनी एक छोटी सी सविता शक्ति से इतनी विशाल सृष्टि की रचना कर दी। उसकी शक्ति का अन्त कहाँ है? वह यदि यह सब कुछ कर सकता है तो क्या मुझे कल्याण के लिये प्रेरणा नहीं कर सकता। मैंने उसे वर लिया है। मैंने अपने आप को उसके अर्पण कर दिया है।

सतुर्दम बतो माया-इ-ख़ेश रा
तू दानी हिसाबे कमो बेश रा

ऐसा गणितज्ञ है तू, ऐसा आडीटर है और आडीटर भी राजकीय (सरकारी) ऐसा अकाउण्टटैण्ट है कि तेरे गणित में कभी कोई त्रुटि नहीं होती। अब तू जान बाबा! और तेरा काम, मुझे कुछ पता नहीं। मैं कुछ नहीं, तू ही सब कुछ है।

कुछ लोग सोचते हैं कि हम जो कुछ सोचते हैं वही ठीक है, परन्तु केवल हमारे सोचने से तो कुछ होता नहीं। हमारी सरकार ने बहुत प्रचार किया, "अधिक अन्न उपजाओ।" इस आन्दोलन पर बहुत रुपया व्यय किया, प्रचार किया "अच्छे बीज लाओ, अच्छे खाद लाओ, ट्रैक्टर लाओ, मशीनें लाओ।" परन्तु आसाम में एक ही दिन की बाढ़ ने एक हजार वर्ग मील में लहलहाते खेतों को समूलोन्मूलन कर डाला।

मैं यह नहीं कह रहा कि हमें यत्न नहीं करना चाहिये । यत्न करना चाहिये अवश्य । यत्न करना हमारा धर्म है । परन्तु यत्न करना चाहिये ईश्वर पर भरोसा करके । मत समझो कि जो कुछ मैं सोचता हूँ वही ठीक है । यह बात ठीक है नहीं । यत्न करो अवश्य—मेहनत करो, पसीना बहा दो, दिन रात एक कर दो, परन्तु याद रखो फल देने का अधिकार भगवान के पास है । इस बात का निर्णय उसे करना है कि वह तुम्हारे कर्म का फल आज देगा या वर्षों में, अगले वर्ष देगा या अगले जन्म में ।

कई लोग कहते हैं कि भाई ! हम श्रम बहुत करते हैं, यत्न बहुत करते हैं, परन्तु पैसा इकट्ठा नहीं होता । पता नहीं कि पैसा इकट्ठा करनेका लाभ क्या है ? जो इकट्ठा करके व्यय नहीं करता और जिसके पास इकट्ठा करने को कुछ नहीं, क्रियात्मक रूप से वे दोनों समान हैं । पंजाब नेशनल बैंक का चौकीदार और वह धनी जिस का लाखों रुपया बैंक में जमा है । दोनों में अन्तर क्या है ? दोनों के पास रुपया पड़ा है, दोनों व्यय नहीं करते हैं । एक अन्तर है अवश्य कि पंजाब नेशनल बैंक का चौकीदार अपने कार्य (ड्यूटी) को समाप्त करनेपर घर जाता है तो टांग पर टांग रख करआराम से सो जाताहै । उसे कोई चिन्ता नहीं उसकी ओरसे बैंक रहे या जाये । उसे कोई भय नहीं । किंतु बेचारा वह धनी जिसका रुपया बैंक में पड़ा है क्या वह भी आराम से सो सकता है ? नहीं चोकीदार जब आराम से सोया होता है, तब भी धनी चिंता करता रहता है कि कहीं ताला न टूट जाये, कहीं बैंक में आग न लग जाये, कहीं ऐसा न हो कि मैं मर जाऊं और मेरा रुपया पड़ा का पड़ा रह जाये । किन्तु फिर भी जो शिकायत करते हैं कि परिश्रम के बाद धन नहीं मिलता, उन्हें मैं कहता हूं कि चिन्ता न करो, धन मिलेगा अवश्य । जो मनुष्य पुरुषार्थ करता है, परमात्मा उसे फल देता है अवश्य । किन्तु कब

देता है—यह मैं नहीं जानता और न कोई दूसरा जानता है । मैं केवल यह कहता हूँ—भगवान पर भरोसा रखो। वह जो कुछ करता है तुम्हारे कल्याण के लिए करता है।

अभी दो वर्ष पूर्व ही हमारे देशबन्धु जी गुप्ता वायुयान में सवार होकर दिल्ली से कलकत्ते की ओर रवाना हुए। अखिल भारतीय पत्रकार समितिके प्रधान थे वे। समिति (कान्फ्रेन्स) की स्टैंडिंग कमेटी का अधिवेशन हो रहा था। इसमें उन्हें पहुँचना था। इसी अधिवेशन में महात्मा गांधीके सुपुत्र और हिन्दुस्तान टाइम्स के प्रबन्ध-सम्पादक-(मैनेजिंग एडीटर) श्री देवदास गांधी भी जाना चाहते थे, किन्तु इन्हें सीट नहीं मिली बड़ी दौड़ धूप की उन्होंने कई यात्रियों को जाकर कहा—"बाबा ! मुझे आवश्यक कार्यवश कलकत्ते पहुँचना है। तुम कल चले जाना। मुझे अपना स्थान दे दो।" किन्तु किसी ने इनकी बात न मानी। देवदासजी बहुत दुःखी हुए। उन लोगों के विषय में जिन्होंने सीट नहीं दी मन ही मन सोचते रहे—"कैसे सहानुभूति रहित मनुष्य हैं। मुझे इतना आवश्यक कार्य था, वहाँ ये लोग एक छोटी सी प्रार्थना भी मान नहीं सके।" किंतु दूसरे दिन प्रातः ही कुछ अन्धकार में यह वायुयान जब कलकत्ता के पास पहुँचा तो आकाश में धुंध बहुत थी। नीचे उतरने का मार्ग इसको नहीं मिला। समुद्र के किनारे नारियल के वृक्षों का जंगल था। इन वृक्षों से जा टकराया यह जहाज चकनाचूर हो गया। आग लग गई। कोई भी यात्री बचा नहीं। हमारे देशबन्धु का अन्त हो गया । यह हृदय-विदारक सूचना जब दिल्ली में पहुँची तो देवदास जी चौंक उठे । इसी वायुयान में वे भी जाने वाले थे। इसमें जानेके लिए उन्होंने दौड़ धूप की थी। सीट न मिलने पर अपने भाग्य को कोसा था। किंतु तब सम्भवतः उन्होंने सिर झुका कर कहा—"धन्यवाद है तेरा भगवान् कि मैं उस वायुयान में नहीं था।" हाँ मेरी माता

भगवान् बहुत दूर तक देखता है हमारी क्या शक्ति कि इतनी दूर तक देख सकें और यदि देख नहीं सकते तो फिर इस बात की चिन्ता क्यों करें कि वह क्या करता है और कब करता है।

एक और बात तुमको सुनाता हूं एक बार मेरे पिता जी बहुत रुग्ण हो गये। मुझे विदित हुआ तो मैं लाहौर से जलालपुर जट्टा की ओर चल पड़ा। गाड़ी में सवार होने से पूर्व अपने छोटे भाई लाला त्रिलोकचन्द को 'खारियाँ' में तार दे दिया कि पिताजी रुग्ण हैं और मैं वहां पहुँच रहा हूँ आप भी पहुँचे। ला० त्रिलोकचन्द 'खारियां' में वकालत करते थे। तार पहुंचा तो वे कचहरी में खड़े एक अभियोग (मुकदमें) के सम्बंध में वाद विवाद कर रहे थे। तार को पढ़ते ही उन्होंने अपने मुन्शी को कहा—"अभी सवा तीन बजे हैं साढ़े तीन बजे गुजरात के लिये लारी जाती है। लारी वाले को कहो कि मेरे लिये एक सीट रक्खे। मैं बहस समाप्त करके अभी आता हूँ" किन्तु बहस हो गई कुछ लम्बी। साढ़े तीन बजे समाप्त नहीं हुई। बस वाले ने समाचार भेजा --"समय हो गया।, लाला त्रिलोकचन्द ने कहा -"थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आता हूँ।' लारी वाले ने कुछ समय तक और प्रतीक्षा की, पौने चार बज गये; किन्तु बहस फिर भी समाप्त नहीं हुई। दूसरे वकील ने कोई नई बात उपस्थित कर दी। इसका उत्तर देना आवश्यक था। लाला त्रिलोकचन्द ने लारी वाले के पास फिर संदेश भेजा, परन्तु चार बजे भी छुटकारा नहीं मिला। चार बजे तक प्रतीक्षा करने के बाद लारी वाला यह कह कर चला गया कि अब और प्रतीक्षा नहीं की जा सकती, दूसरे यात्री तंग आ गये हैं। कोई साढ़े चार बजे के लगभग लाला त्रिलोकचन्द जी को छुटकारा मिला। बाहर आकर जब देखा कि लारी वाला चलागया है तो बहुत क्रोध में आये और अपने भाग्य को कोसा, पिता जी रुग्ण हैं; मुझे जलालपुर पहुँचना है अब पहूंचूँ कैसे ? " लारी वाले को

कोसा—"इसे मैंने कत्ल के मुकद्दमे में बचाया था। यह बदला दिया इसने'। थोड़ी देर प्रतीक्षा भी न कर सका। कैसे रूखे लोग हैं? अब मैं क्या करूं? कैसे पहुँचूं पिता जी के पास?" इस प्रकार सोचते हुए वे निराश और उदास बने सड़क पर खड़े थे कि जेहलम की ओर से एक मोटर आती हुई दिखाई दी। मोटर के स्वामी लाला त्रिलोकचन्द जी के मित्र थे। मोटर में वे स्वयं बैठे थे, गुजरात जा रहे थे। लाला त्रिलोकचन्द को देखकर उन्होंने मोटर खड़ी कर ली। त्रिलोकचन्द से पूछा:—"इतने उदास क्यों हो?" उन्होंने सारी बात कह सुनाई और यह भी बताया कि जलालपुर में उनका पहुंचना आवश्यक है। मित्र ने कहा—"इसमें घबराने की क्या बात है? लारी चली गई तो जाने दो, यह मोटर तो है। बैठो इसमें, मैं तुम्हें लेकर चलता हूं।" किन्तु मोटर में बैठ कर वे खारियां से छः मील की दूरी पर ही पहुँचे थे कि एक भयानक दृश्य उनके सामने आ गया। एक लारी सड़क की दाईं ओर उलटी पड़ी थी। दस यात्री मर गये थे। लारी चकनाचूर हो गई थी। वृक्ष टूट गया था और यह वही लारी थी जो लाला त्रिलोकचन्द को लिये बिना चली आई थी। जिसके न मिलने के कारण लाला त्रिलोकचन्द उदास और निराश हुए थे। उसी समय उन्होंने भगवान् का धन्यवाद किया और हाथ जोड़ कर कहा—"धन्य हो भगवान् तूने बचा लिया मुझे।"

अरे! मत समझो कि सब कुछ तुम्हीं जानते हो? तुमसे अधिक ज्ञानी वह प्रभु है। उसकी आँख बड़ी है, तुम्हारी छोटी। जहाँ तक वह देखता है, वहाँ तक कभी तुम देख नहीं पाते। इस लिये उस पर भरोसा करो। उससे कहो—

"हे अग्निदेव! ले चल मुझे सीधे रास्ते से। ले चल उधर जिधर तू चाहता है।"

गीता में भगवान् कृष्ण ने भी इस विचार को प्रकट करते

हुए कहा 'सर्वान् धर्मान् परित्यज्य मामेकंशरणं व्रज" अर्थात् सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ। यह बात गायत्री में कही गई—"हे भगवान् तुझे वरता हूँ। अपने आपको तेरे अर्पण करता हूं।" इसी को 'शरणागति' कहते हैं। यही नारद की 'अनन्य-भक्ति, थी। इसी को योगशास्त्र में 'ईश्वर-प्रणिधान, अपने आपको ईश्वर के समर्पण कर देना' कहा है। इसी को महर्षि दयानन्द 'उपासना' कहते हैं।

इसका तात्पर्य इसके विना और कुछ नहीं कि मैं तेरे सामने बिक गया हूँ। मैं तेराहो गया हूं। आपने कईबार विवाह-संस्कार में पढ़े जाने वाले मंत्र सुने होंगे। विवाह देखा होगा। हमारे पण्डित जगतराम जी ने तो सम्भवतः सहस्रों विवाह कराये होंगे।

(पण्डित जगत्‌राम आर्यसमाज अनारकली के पुरोहित थे। आजकल आर्यसमाज सीताराम बाजार दिल्ली के पुरोहित हैं। वे स्वामी जी के सामने ही बैठे थे ......। स्वामी जी ने जब कहा कि उन्होंने सहस्रों विवाह कराये हैं, तो पास में बैठे हुए सभी लोग हंस उठे। स्वामी जी ने हँसते हुए कहा—)

अपना नहीं, दूसरों के विवाह करायेहैं उन्होंने। स्वयं बेचारे विधुर हुए बैठे हैं। इस पर कितने ही लोग ऊंचे स्वर से हंस पड़े और स्वामी जी कहते रहे।

पण्डित जगतराम जी आपको बता सकते हैं कि विवाह के मण्डप में पवित्र अग्नि के सामने कन्या वर को संबोधन करके कहती है—"आज से मैं तेरे पास बिक गई। आज से मैं तेरी हुई।" और वर भी कन्या को संबोधन करके कहता है—"आज से मैं तेरे पास बिक गया। आज से मैं तेरा हुआ।" यह है गायत्री के इस 'वरेण्यम्' शब्दका अर्थ। अपने आपको भगवान के अर्पण कर दो, बिक जाओ, इसके सामने सिर झुका दो और

कहो—

'सरे तसलीम खूम है जो मिजाजे यार में आये।

अब सुनिये यह 'भर्गः' क्या है ? यह शब्द, जो गायत्री के दूसरे भाग में वर्तमान है, गोपथ ब्राह्मण में इस शब्द की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के मंत्रों का रहस्य खोलने वाले हैं। गोपथ ब्राह्मण में गायत्री सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी भेद की बातें प्रकट की हैं कि इन्हें देखकर आश्चर्य होता है। भर्गः' शब्द के दस अर्थ इस ब्राह्मण ग्रंथ में लिखे हैं। जिससे बड़ा कोई दूसरा न हो। 'भर्गः' अन्न को भी कहते हैं पाप का नाश करने वाला भी, भुना हुआ, पका हुआ भी, पृथ्वी, अग्नि वस्तु बसंत—इस प्रकार दस नाम गिनाये हैं और कहा है कि ये सब 'भर्गः' हैं। पृथ्वी के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं होता। पृथ्वी न हो तो हम चलें कहां ? खड़े कहां हों अन्न कहां से हो ? और अन्न न हो तो जीयें कैसे ! पृथ्वी की इस विशेषता का अनुभव करके ही इसे 'भर्गः' कहा गया है। बसंत सब ऋतुओं का राजा है। इसीलिये इसे भी 'भर्गः' कहा गया है। बसंत को आदि ऋतु भी कहते हैं, मनुष्य जब इस पृथ्वी पर पहले पहल जागा तो उसके चारों ओर बसंत ऋतु थी। चारों ओर फूल खिले थे। पिघली हुई बर्फ से नीले-नीले निर्भर गिर रहे थे। नदियां संगीतके साथ बह रही थी। आम्र मञ्जरी पर कोयल कुह-कुह की मधुर ध्वनि कर रही थी। प्रकृति आनन्द विभोर हो नाच रही थी। आकाश में विद्युत और मेघ नाच रहे थे। इस सुन्दर ऋतु-राज में संसार का प्रथम मनुष्य जाग उठा, तब से बसंत सबसे उत्तम तथा श्रेष्ट भी है। इसलिये वह भी भर्गः' है। 'भर्गः का अर्थ है सबसे अच्छा जिससे अच्छा कोई न हो।

परन्तु 'भर्गः' शब्द के कुछ और भी अर्थ हैं। जीवन प्रदान करने वाला, पका देने वाला, आनन्द देने वाला, इन अर्थों पर

विचार करना चाहिये।

गायत्री का जाप करता हुआ उपासक जब 'भर्गः' शब्द पर पहुँचे, तब उसे अनुभव करना चाहिये कि वह सवितादेव की उस शक्ति में प्रवेश कर रहा है जो सबसे महान् है, आनन्द देने वाला है, पापों का जला देने वाला है। उसे विचारना चाहिये कि उसके पापों को मल जल रहा है। इसके लिये दुःख, चिन्तायें, कष्ट सबका अन्त हो रहा है। महर्षि दयानन्द ने 'भर्गः' शब्द के अर्थ ये लिखे हैं—"जो उपद्रव-रहित, पाप रहित, निर्गुण,शुद्ध, सकल दोषों से रहित, पका हुआ, परमार्थ 'ज्ञान स्वरूप' है। वह भर्गः है। कवि कहता है—

"जब ही नाम हृदय धरियो,
भयो पाप को नाश।
जैसे चिंतगी आग की,
परी पुराने घास।"

नाम को हृदय में धारण करने से पाप का नाश होता है अवश्य। इस प्रकार जल उठते हैं वे, जैसे पुरानी सूखी घास जल उठती है। इस भावना के साथ जप करना चाहिये। किन्तु देखा, कवि ने 'हिरदै धरियो' कहा है। चित्त में धारण करने की बात कही है। होठ धरियो, जबान धरियो, कण्ठ धरियो नहीं कहा। केवल होठों से जाप करते रहने से कभी कुछ होता नहीं। हाथ में माला लेकर इसको फेरते रहने से भी कुछ नहीं होता।

"माला तो कर में फिरे जीव फिरे सुख माही।"
और मणिराम..................?

(स्वामी जी ने हँसते हुए कहा—"मणिराम कनाट प्लेस में फिरे।" तो सब लोग हँस उठे।

स्वामी जी कहते रहे ।

"माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहीं ।"

मणिराम चहूं दिश फिरे, यह तो सिमरण नाहि ।"

नहीं, इस प्रकार तो स्मरण नहीं होता । मेरी मां, इस प्रकार स्मरण और जाप नहीं होता। जाप होता है उस समय, जब माला होंठ जिह्वा, कण्ठ, चित्त और मन सब एक साथ फिरें । इस प्रकार जो जाप करते हुए 'भर्गः' कहता है । उसके सभी पाप जल कर राख हो जाते हैं। आनन्द और सुख का एक संसार उसके लिये जाग उठता है। इससे अधिक 'भर्गः' और क्या करे ?

अब गायत्री के दूसरे भाग में आइये । 'देव' शब्द की बात सुनिये । 'देव' का अर्थ है सबका शिरोमणि' सबसे बड़ा। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के पहले समुल्लास में 'देव' शब्द के सम्बन्ध में ऐसे-ऐसे रहस्य खोले हैं कि इन्हें देखने के पश्चात् और कुछ भी समझना शेष नहीं रहता। सोलह बातें इन्होंने इस देव शब्द के सम्बन्ध में लिखी है। इन सबका वर्णन इस समय नहीं कर सकता। केवल एक अर्थ का वर्णन करता हूँ। देव का अर्थ उन्होंने 'आनन्द' को देने वाला' किया। सूर्य' प्रकाश और उष्णता देता है, पवित्रता और शुद्धता देता है—अतः यह देव है। जल मैले कपड़ों को पवित्र करता है, प्यास बुझा देता है, खेतों को लहलहा देता है। बंजर भूमि भाग को पुष्पों से प्रफुल्लित कर देता है। वह भी देव है। इस प्रकार तेंतीस देवताओं का वर्णन आता है हमारे प्राचीन ग्रन्थों में। बाद में तेंतीस देवता से तेंतीस करोड़ बन गये। किस प्रकार यह बात हुई। तेंतीस देवता कौन से हैं? कभी समय मिला तो इन देवताओं के सम्बन्ध में वर्णन करूँगा। आज 'देव' शब्द के केवल एक ही अर्थ का वर्णन करता हूं। वह अर्थ है 'आनन्द देने वाला'। देवताओं के पास जो कुछ है वह हमारे कल्याण के लिये है। वे देते हैं, इसलिये देव हैं।

ईश्वरसबसे अधिक देता है 'इसलिये वह सबसे बड़ा देव है, महादेव है।

गायत्री का जाप करते समय देव शब्द पर आओ तो यह अनुभव करो कि परमात्मा सब कुछ दे रहा है, परन्तु केवल यह सोचने से और कहने से कि परमात्मा सब कुछ देता है वह देव है और महादेव है, तो कोई काम नहीं बनता। इसके साथ ही यह भी देखना चाहिये कि परमात्मा यदि देता है मैं यदि उसके सबसे बड़े गुण आनन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ, तो मेरा भी कर्तव्य है कि मैं भी किसी को कुछ दूं। मेरे पास यदि धन है तो इस पर सांप बन कर न बैठ जाऊं। शक्ति है तो दूसरों की रक्षा करने से पीछे न हटूँ। ज्ञान है तो दूसरों को मार्ग बतलाने में कृपणता न करूं। गायत्री जाप की ठीक-ठीक विधि केवल एक है कि ईश्वर को देव मान कर अनुभव करो कि वह सब देता है और फिर स्वयं भी दो। दीन को आश्रय, दुखी को सांत्वना, रोगी को औषध, तुम भी दो। तुम भी देवता बनने का यत्न करो। गोपथ ब्राह्मण के ऋषि ने गायत्री में 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' को तप का भाग कहा है। जब तूने वर लिया इस ईश्वर को बिक गया तू उसके सामने तो फिर अपने लिये सुखों की याचना नहीं कर। दूसरों को सुख देने का प्रयत्न भी कर। दूसरों को सुख देने का कार्य स्वयं दुःख उठाये बिना होता नहीं। इसलिये गोपथ ब्राह्मण ने इस भाव को तप का भाग कहा है। स्वयं दुःख उठाकर दूसरों को सुख देना—यह तप है। माँ बच्चे को बिस्तरे के सुखे भाग में सुलाती है, स्वयं गीले भाग में सो रहती है—यह तप है गृहस्थाश्रम में पति प्रयत्न करता है कि चाहे उसे दुःख ही होता हो, परन्तु पत्नी सुखी रहे। पत्नी प्रयत्न करती है कि भले ही वह दुःख में रहे, किन्तु पति को आराम मिले—यह तप है। सन्तान होने पर माता-पिता दोनों प्रयत्न करते हैं कि सन्तान सुखी रहे, चाहे हम रहें या न

रहें। यह भी तप है। जब भगवान् को वर लिया, तो सब से पहले तप की यह भावना होनी चाहिये। यह पहली बात है। दूसरी है 'भर्गोदेवस्य' की भावना। 'भर्गोदेवस्य' के शब्द बोलो, तो निर्णय करो मन में कि मुझे दूसरों के कल्याण के लिए जीना है। अनुभव करो कि तुम भगवान् के सामने खड़े हो। वह दूसरों का हित करता है, उन्हें आनन्द देता है। इसलिये तुम भी दूसरों का हित करो। उन्हें आनन्द दो। ऐसा करने से गायत्री का जाप सफल होता है।

यदि मैं जाप करता हूँ और तप की भावना, दूसरों का हित करने की भावना मेरे अंदर पैदा नहीं होती, यदि मैं तप और त्याग के मार्ग पर नहीं च लता तो याद रक्खो कि गायत्री के जाप से कोई काम नहीं होगा।

कई मनु ष्यों ने एक-एक करोड़ ज़प किया। मेरे पास वे आते हैं और कहते हैं कि एक करोड़ मंत्र जप लिये, फिर भी कुछ नहीं हुआ। अरे ! हो कैसे, तुमने विज्ञान की पुस्तक पढ़ली। प्रयोग-शाला (लैबोरेटरी) में जाकर प्रयोग नहीं किया, आचरण नहीं किया गायत्री का फल चाहते हो तो आओ। संसार की इस प्रयोगशाला में गायत्री का जो जाप करो उस पर आचरण भी करो। मैं ईश्वर को तो कहूँ 'देवता' और स्वयं लेवता बनकर दूसरों की सम्पत्ति छीनता फिरूं तो परमात्मा की कृपा कहां मिलेगी। परमात्मा तुम्हारी मालासे प्रसन्न नहीं होता वह प्रसन्न होता है आचरण से। वह कृपा करता हैं उस पर जो उसके प्राणियों पर कृपा करता है।

पहले पहल जब मैं गंगोत्री में पहुंचा तो वहां रहने वाले महात्माओं से मिला। कुछ अत्यन्त तपस्वी महात्मा वहां रहते हैं। मैंने सोचा ये लोग यहां बैठे हैं। नीचे संसार दुःखों की भट्टी में जल रहा है। उन्हें क्यों न कहूँ कि ये नीचे पहुँचे और अपने तप

और योग से संसार का कल्याण करें। एक महात्मा से बात हुई तो उन्होंने कहा "एक तू आया है ऐसी बात कहने वाला, नहीं तो जो कोई आता है अपना ही दुखड़ा लेकर आता है। किन्तु सुनो आनन्द स्वामी! संसार हमारे लिये मर गया और हम संसार के लिये मर गये। हमें संसार से कुछ लेना नहीं।

मैंने हँसते हुए कहा—"धन्य हो महाराज! आपने तो गुड्डी ही काट दी। एक और महात्मा के पास गया। वे बोले—"तू कहता तो ठीक है। संसार वास्तव में अत्यन्त दुःखी है। हम इस बात को जानते भीं हैं, किन्तु हम प्रार्थना के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं? हम कहीं जाते वाते नहीं। हम यहाँ बैठ कर संसार के लिये प्रार्थना करते हैं।" तब मैं स्वामी रामानन्द के पास गया स्वामी रामानन्द जी महान् तपस्वी हैं। सर्दी-गर्मी सदा ही गंगोत्री रहते हैं। आजकल गंगोत्री में हिम-पर्वत खड़े हैं। चारों ओर हिम ही हिम है। इसमें स्वामी रामानन्द कपड़े पहने बिना ही सर्वथा नग्न रहते हैं। हिम में रहने के कारण उनका शरीर सूखे और जले चमड़े की भांति हो गया। ग्यारह वर्ष तक वे मौन धारण करके बैठे रहें थे। बहुत ऊंचे उठे महात्मा हैं। राजगुरु पंडित धुरेन्द्र, शास्त्री जी पिछली बार मेरे साथ गंगोत्री में गये, तो स्वामी रामानन्द जी को छोडकर और कोई महात्मा उन्हें अच्छा नहीं लगा। इन्हीं स्वामी रामानन्द के पास मैं गया। उन्हें देश की अवस्था सुनाई और बताया कि लोग कितने दुखी हैं। अमरीका और रूस की बातें सुनाई। अन्तर्राष्ट्रीय खैंचा तानी की कथा सुनाइं। एक बार, दो बार, तीन बार, मैं इनके पास गया। घण्टा दो घण्टा इन्हें बातें सुनाता रहा। वे सुनते रहे और चुपचाप बैठे रहे। कोई भी उत्तर उन्होंने नहीं दिया। अन्त में तंग आकर फिर एक दिन इनके पास गया। वे गंगा के किनारे एक बहुत बड़े पत्थर पर बैठे थे। मैंने जाकर फिर इनसे बात कहनी प्रारम्भ की।

वे फिर चुप। मैंने कहा, "स्वामी जी ! इतने दिनों से मैं आपको संसार की अवस्था सुना रहा हूँ, परन्तु आप ऐसे चुप रहते हैं, जैसे यह पत्थर। आपको सुना दिया और इस पत्थर को सुना दिया, दोनों एक बराबर हैं। क्या आप कोई उत्तर नहीं दे सकते स्वामी रामानन्द धीमे से मुस्कराये। मैंने कहा-"अब कृपा करो।' तब उन्होंने हाथ से संकेत किया, आँखें मूँद ली। थोड़ी देर बाद आँखें खोलकर बोले —"कहो आनन्द स्वामी !" मैंने कहा— "आपको मेरा नाम कैसे ज्ञात हो गया ? मैंने तो कभी बताया नहीं और कोई मुझे जानता नहीं।" वे बोले कि हम यहां काहे को बैठे हैं। इतने वर्ष हो गये यहाँ बैठे-बैठे, क्या तेरा नाम भी नहीं जान सकते। मैंने कहा, "मैं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि बहुत तप कर लिया आपने। अब नीचे चलिये संसार का कल्याण कीजिये।" वे बोले, नहीं, ऐसा नही करेंगे। आनन्द स्वामी ! यह संसार बहुत बिगड़ गया है। कपड़े मैले हो जायें तो इन्हें धोना पड़ता है। संसार को भी धोया जाता है। रोगी वैद्य के पास आता है। वैद्य बिना बुलाये रोगी के पास क्यों जाये। तेरे यत्न करने से संसार सुधारेगा नहीं इसे एक बहुत बड़ी भट्टी में जाना है। जाने दो इसे। तू मुझे नीचे चलने को कहता हैं। मैं कहता हूँ तू भी न जा नीचे।" यह है गंगोत्री महात्माओं का दृष्टिकोण।

परन्तु मैं जिस महापुरुष को अपना गुरू मानता हूँ उसने तो यह बात मुझे नहीं सिखलाई। गंगोंत्री के एक भाग में वह कंदरा देखी जहां परम महात्मा महर्षि दयानन्द ने घोर तप किया था। धराली से पौने दो मील के अंतर गंगा के किनारे है वह कंदरा। धराली के नम्बरदार श्रीनारायण सिंह ने वह कंदरा मुझे दिखाई और बताया कि उनके पिता ठाकुर शिवासिंह ने स्वामी जी को देखा, उनकी सेवा की थी। स्वामी जी को भोजन देने के लिये

ठाकुर शिवसिंह स्वयं जाया करते थे। नारायणसिंह ने यह भी बताया कि इस कंदरा में महर्षि ने एक बार तीन मास की समाधि लगाई थी। इतना कुछ करने के बाद भी योगाभ्यास के इस ऊंचे स्तर पर पहुँचने के बाद भी वे नीचे आये, जिससे कि संसार को सत्य-मार्ग बतला सकें। अंधकार में भटकते हुए ससार को प्रकाश की ओर ले जायें।

मैंने स्वामी रामानन्द जी से कहा कि मैं तो उस गुरु का शिष्य हूँ। मेरे लिये आराम से बैठना नहीं है। आप नहीं जाते तो आप की इच्छा। परन्तु मुझे तो जाना है। वे बोले—"तू जा, मार टक्करें, परन्तु कोई सुनेगा नहीं। संसार अभी सुनने की अवस्था में नहीं है। और कई बार मैं सोचता हूँ कि उनकी बात कितनी सच्ची थी। वास्तव में यहाँ कोई सुनता नहीं। इस समय रात है। आप लोग काम काज से छुटकारा पाकर थोड़ी देर के लिये यहाँ आ गये, किन्तु मैं यदि कहूँ कि प्रातः ४ बजे मेरे पास आइये। मैं आपको प्रभु-दर्शन का मार्ग दिखाऊँगा, तो सम्भवतः कोई आयेगा नहीं।

किन्तु कोई सुने या न सुने; कोई माने या न माने, यदि हम ईश्वर को देव' कहते हैं तो हमें स्वयं भी दूसरों को देना होगा। इसीलिये महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का यह नियम बनाया--'प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। महर्षि जी के महत्त्व को हम समझ नहीं सके। अभी इन्हें हुए केवल सौ वर्ष बीते हैं। सहस्त्र वर्ष के बाद सम्भवतः संसार उनकी महिमा को समझेगा, जब उसको मालूम होगा कि जो महान् कल्याणकारी बात महर्षि ने इस छोटे से वाक्य में लिखी, उसके बिना कल्याण का कोई मार्ग नहीं है। केवल अपनी उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझना इतनी बड़ी बात है

कि संसार उसे समझले और अपनाले तो समस्त आर्थिक खिंचावों का अन्त हो जाये। मोटर वाला समझे कि मेरे पास यदि मोटर है तो मेरे पड़ोसी के पास भी होनी चाहिये। पदाधिकारी समझे कि यदि मैं उच्च पद पर हूँ तो दूसरों को भी ऊंचे उठाना चाहिये तब झगड़ा कहां रहेगा ? ईर्ष्या, घृणा तथा खिंचाव कहां रहेगा। और आर्थिक संकट कहां रहेंगे जो सदा ही कुछ वर्ष बाद संसार को लड़ाई की ओर धकेल देते हैं।

[उस समय स्वामी जी ने अपनी घड़ी को देखा तो कहने लगे—'शेष रह गये हैं दस मिनट। दस मिनट में एक बात बता कर मैं समाप्त कर दूंगा और फिर कीर्तन होगा।"]

गायत्री मंत्र का अन्तिम भाग है—"धियो यो नः प्रचोदयात्' 'धीं का अर्थ है बुद्धि, ज्ञान, सोच और विचार। किन्तु क्या केवल 'ज्ञान' का नाम 'धी' हैं ? गोपथ ब्राह्मण में 'धी' का अर्थ किया है 'बुद्धि' कर्म, मेधा, बुद्धि में जो बात आये उसे कर्म में लाना, उसको प्रयोग में लाना। 'धी' का वास्तविक अर्थ यह है कि यदि मैं परमात्मा को 'भूर्भुवःस्व' कह रहा हूँ तो मुझे स्वयं भी यत्न करना होगा कि मैं दूसरों के प्राणों की रक्षा करूं। उनके दुःखों को दूर करूं। उनको सुख देने का यत्न करूं।

गायत्री मंत्र के जाप की विधि यह है कि जाप भी करो और उसके अनुसार आचरण भी करो। ऐसा करने से ही गायत्री मंत्र सिद्ध होता है। वह सभी फल देता है, जिनका मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ।

गायत्री का जाप कैसे करना चाहिए यह अगली बार बताऊंगा।

मौद्गल्य और ग्वाल, मैत्रेय की बातचीत सुनाने का प्रण किया था। वह भी सुनाऊंगा तब आपको पता लगेगा कि गायत्री मन्त्र कितना महान् है। महर्षि दयानन्द से पहले जन

साधारण को इस मन्त्र के पढ़ने का अधिकार न था उस समय एक भ्रम था कि देवियों को इस मन्त्र के जपने का अधिकार नहीं। इन्हें इस मंत्र का जप नहीं करना चाहिये। यह भ्रम संभवतः इसलिये उत्पन्न होगा कि देवियों में श्रद्धा विशेष होती है। साधुओं और पण्डितों ने समझा कि पुरुष पहले ही हमारी बात को नहीं सुनते, देवियों को भी गायत्री मंत्र से समझ आ गई तो फिर उनकी सेवा कौन करेगा? उन्हें अच्छे-अच्छे भोजन कौन खिलायेगा? किन्तु यह भ्रम तो सर्वथा निर्मूल है। महर्षि ने बताया कि यह मंत्र सब के लिये है। सब का इस से कल्याण होता है, स्त्री हो या पुरुष, बच्चा हो या बूढ़ा सब के लिये कल्याण का देने वाला है।

—:-०-:—

छठा दिन

प्यारी माताओं ! तथा सज्जनों !

ज्यों तिल माहीं तेल ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रभु तुझ में बसे जाग सके तो जाग ॥

प्रभु को ढूंढने के लिये बाहर तो जाना नही पड़ता, केवल जागना पड़ता है। कई लोग पूछते हैं परमात्मा कहां रहता है ? कैसे इसके दर्शन होते हैं ? कुछ और लोग जो जाग नहीं सकते निराश होकर कहते हैं परमात्मा व आत्मा कोई कुछ नहीं। यह सब भ्रम है। किन्तु जो ईश्वर को मिलता है, जिसे विश्वास है, वह कहता है—"ईश्वर है या नही; इससे मुझे अन्तर क्या पड़ता है ? मैं खोज कर रहा हूँ उसे, यदि वह मिल गया तो आनन्द का अपार कोष मुझे मिल जायेगा। यदि वह न मिला तो मेरी कोई हानि नही। इस विश्वास के साथ मैं खोजता हूँ। किन्तु खोज करने के लिये कहीं बाहर नहीं जाता। अपने अन्दर देखता हूँ ठीक प्रकार से—और वह है गायत्री मन्त्र का जाप।

अब तक इस मन्त्र के पाँच छः शब्दों के अर्थ मैं आपको बता चुका, इन पांच छः शब्दों के अर्थ बताने में पाँच दिन लग गये, किन्तु जब आप जाप करें तब इन सब अर्थों को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप से अर्थों को याद रखियेगा। मुख्य अर्थ वे ही हैं, जो स्वामी नित्यानन्द जी ने आज से बासठ वर्ष पूर्व बताये थे। वे अर्थ हैं:—

"हे रक्षक ! प्राण प्यारे ! दुःखों को दूर करने वाले ! सुखों को देने वाले ! मैं तेरे इस दिव्य, सुन्दर चमकते हुए रूप का ध्यान करता हूँ, जो आनन्द को देने वाला और पापों का नाश करने

वाला है । हे प्रभु ! मेरी बुद्धि को और मेरे कर्म को अपनी ओर ले चल ।

कई लोग पूछते हैं कि इस बात को बार-बार कहने का गायत्री के जाप का लाभ क्या है ? मैंने आपको बताया था कि मंत्र को बार-बार पढ़ने की आवश्यकता क्यों है ? जैसे रोग होने पर हम बार-बार दवाई खाते हैं, इसी प्रकार जब तक मन के रोग दूर नहीं होते, मन स्वच्छ और निर्मल नहीं होता, तब तक गायत्री जाप भी करना पड़ता है । यदि आपका मन स्वच्छ है तो मंत्र को एक बार पढ़ने से आपका कल्याण हो जायेगा ! आप के लिये दुःखों का अन्त हो जायेगा । आप के मैल का अन्त हो जायेगा । आनन्द से भरपूर प्रभु के दर्शन हो जायेंगे । तब इसके बाद गायत्री को पढ़नेकी आवश्यकता नहीं । किन्तु जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक तो यह जाप करना ही पड़ेगा । एक बीमार किसी वैद्य के पास जाता है । वैद्य उसे देखकर कहता है—“यह लो चन्द्र प्रभावटी । एक गोली प्रातः खाओ और एक गोली सायंकाल ।” रोगी पूछता है—कब तक खाऊं ?” वैद्य कहता है—‘जब तक रोग निवृत न हो जाये ।” यही दशा इस मंत्र की है । तब तक जाप करना पड़ता है इस मंत्र का, जब तक मन का रोग दूर न हो जाये । जब तक रोग है, तब तक तो औषधि खानी ही पड़ेगी और कोई मार्ग नहीं, और कोई विधि नहीं । गायत्री एक बूटी है । ऐसी बूटी जो इच्छाओं के और पाप के विष को नष्ट कर देती है ।

साँप और नेवले की लड़ाई सम्भवतः आपने कभी देखी हो । परन्तु इनकी वास्तविक लड़ाई जंगल में होती है । विषैला साँप तीव्र विष से पूर्ण नेवले के सामने आकर खड़ा हो जाता है । नेवला इस पर झपटता है । अपने दाँतों से और नाखूनों से उसको लहूलुहान कर देता है, किन्तु साँप के पास भी तो एक शस्त्र है ।

उसतीव्र विषकी पूरी शक्तिसे नेवलेको डस लेता है। नेवला जानता है कि विष का प्रभाव होते ही वह मरेगा। बचेगा नहीं। अतः वह लड़ाई को छोड़कर जंगल में भाग जाता है। एक बूटी का इसे पता है। इसे खोजता अपने शरीर के डसे हुए भाग को इसके साथ रगड़ता है। बूटीके प्रभाव से विष प्रभाव रहित हो जाता है साँप के साथ लड़ने के लिये फिर उसको ललकारता है, फिर उसे लहू-लुहान करता है सांप फिर डस जाता है, फिर जङ्गल में भागता है कि विष के प्रभाव को दूर कर आये। इस प्रकार वह बार-बार करता है। सांप वार-बार डसता है। नेवला बार बार बूटी से रगड़कर इसके प्रभाव को प्रभाव रहित कर देता है। अन्त में सांप के विष के विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। डसने पर नेवले को कुछ होता नहीं। तब वह अपने तीखे दांतों से सांप को टुकड़े-टुकड़े करके रख देता है, पीस देता है इसे।

इस प्रकार हमारे अन्दरभी लगातार एक देवासुर-संग्राम होता रहताहै। पाप भावना और पुण्यकी भावना, विषय भावना और मोक्ष की भावना इन दोनों में युद्ध होता है। इस युद्ध से बचने का कोई साधन नहीं। इस युद्ध को देखकर मनुष्य चकित होकर पूछता है—"क्या करूं ?" तब जानने वाला इसको उत्तर देता है—

विषय का विष-धर जब डसे; ओ३म् जड़ी को खा।
है नाग दमन यह औषधि ढूँढन दूर न जा॥"

काम की अग्नि जब जल उठे, जब काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार तुम्हें कुमार्ग की ओर ले जाने के लिये तुम्हारे अन्दर विष भर दें। तब 'ओ३म्' का जाप करना। यह देवासुर—संग्राम शान्त हो जायेगा। विष का अन्त हो जायगा, सांप के विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। बार-बार इसी प्रकार करोगे, तो कामनाओं का विष समाप्त हो जायेगा। चित्त की वृत्तियां पर

विजय प्राप्त हो जायेगी। एक सौ आठ वृत्तियों को जो जीत लेता है, उसी को १०८ कहते हैं। जो अधिक बड़ा योगी और महात्मा हो, जिसने अधिक वृत्तियों पर विजय प्राप्त की हो, उसे १००८ भी कहते हैं। किन्तु यह विजय मिलती है केवल इस बूटी के प्रयोग से, ओ३म् की बूटी से और गायत्री की औषध से।

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि गायत्री को ही इतना महत्व क्यों देते हैं? गायत्री को ही जड़ी क्यों कहते हैं, जिससे कामनारूपी सर्प का विष दूर हो सके। इसके विषय में मैंने आपको अपना अनुभव बताया। उपनिषद् के ऋषियों का अनुभव बताया। गायत्री में चोबीस अक्षर हैं और ये चौबीस अक्षर कुछ इस प्रकार रख दिये गये हैं कि मन के अन्दर इन्हें बोलने के साथ शरीर के अन्दर एक विचित्र सी झंकार उत्पन्न होने लगती है। वीणा की तारों में एक तार को हिला देने से जैसे शेष तारें हिल उठती हैं। एक तार को छेड़ देने से जैसे शेष तारों में झंकार जाग उठती है। वैसे ही गायत्री मन्त्र के जाप से भी शरीर के सारे मर्म स्थानों में जाकर चोट लगती है। इस बात का ज्ञान जन-साधारण को नहीं होता। गायत्री का प्रभाव कहाँ कहाँ पर होता है—इसका पता उस समय लगता है, जब लगातार जाप करने के अनन्तर मनुष्य योग की अवस्था में पहुँचता है और योगाभ्यास के द्वारा उस पद को प्राप्त करता है जहां प्रत्येक जड़ और चेतन भिन्न-भिन्न रूप से दिखलाई देते है। उस समय बाहर का यह शरीर भूल जाता है, बाह्य संसार भूल जाता है। अन्दर प्रत्येक स्थान पर ही प्रकाश दीखता है। इस प्रकाश में प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता स्पष्टतया प्रकट होने लगती है। क्या होता है उस समय इसका थोड़ा-सा वर्णन आपके सामने रखता हूँ। योगाभ्यास करते हुए योगी जब ध्यान की पहली परिपक्वावस्था में पहुँचता है, तो सब से पहले बाहर का शरीर भूल जाता है।

बाहर के शब्द सुनाई नहीं देते हैं, बाहर की वस्तुएँ दिखाई नहीं देतीं अन्दर ही अन्दर विचित्र प्रकार के रूप दिखाई देते हैं, शब्द सुनाई देते हैं, सुगन्ध आती है, रस का अनुभव होने लगता है। शब्द की ओर ध्यान दो तो ऐसा प्रतीत होता है कि दूर कहीं किसी पहाड़ की चोटी पर ढोल बज रहा है। दूर कहीं कोई अत्यन्त मधुर बाँसुरीका राग अलाप रहा है। निर्झरों के झरने का शब्द सुनाई देता है। मेघ गर्जन करते हुए प्रतीत होते हैं। कभी तीव्र कड़कड़ाते हुए शब्दों में, कभी धीमे मधुर स्वर में कभी ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दूर कहीं पर कोई गान कर रहा हो। क्या गाता है यह ज्ञात नहीं होता, केवल ध्वनि का ही बोध होता है। रूप का ध्यान करो, तो विचित्र ही प्रकाश दिखाई देते हैं। कभी जैसे दीपक जल रहा हो, जैसे बिजली का बल्ब जगमगाता हो, कभी जैसे एक जुगनू हो, दूर पर एक तारा हो, कभी सूरज चमकता हो, करोड़ों सूरज एक साथ चमक उठे हों, कभी इस प्रकार सहस्रों बिजलियाँ एक साथ चमक उठी हों? ऐसी अवस्था में कई बार योगी डर से कांप उठता है। घबराकर आँखें खोल देता है। सुगन्धि का ध्यान करो तो ऐसी ऐसी सुगन्धियाँ आने लगती हैं जो कि बाहर की किसी भी वस्तु में नहीं इतनी मधुर, इतनी मीठी कि इन्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता। इस प्रकार दूसरी वस्तुएं भी अनुभव में आती होंगी। किन्तु यह सब कुछ आत्मा नहीं, ईश्वर नहीं है, प्रकृति है। जो कुछ दिखाई देता है वह जड़ है, चेतन नहीं है। कुछ लोग ऐसी वस्तुओं को देखकर समझने लगते हैं कि हो गया कल्याण, मिल गये प्रभु के दर्शन। किन्तु ऐसा समझना तो ठीक नहीं। आत्मा को देखना हो तो अभी और आगे चलना पड़ता है। जब ये वस्तुएं दीखने लगें तब रुक नहीं-चल। अभी आगे चल, ध्यान की दूसरी परिपक्वावस्था में दूसरी श्रेणी में पहुँच, जहाँ पहुँच कर पंचतम

मात्रा 'अहमस्मि' (अहंकार) दिखाई देने लगती हैं। प्रकाश के वे रंग बिरंगे गोले जिनके कारण से आंख, कान, नाक, जिह्वा तथा चर्म अपना कार्य करते हैं। इतना सुन्दर रूप है इनका। कई-कई साधक घण्टों इन्हें देखते रहते हैं। आकाश, जल, अग्नि वायु, पृथ्वी के प्रतिनिधि बन कर वे चमकते रहते हैं किन्तु वे भी तो आत्मा नहीं। वे भीं प्रकृति हैं, जड़ है। इससे भी आगे चल। तभी 'अहंकार' का दर्शन होता है। चमकती हुई ज्योति सबको अपनी ओर खीचती हुई, सबको अपना प्रकाश देती हुई, परन्तु वह भी आत्मा नहीं है, प्रकृति का एक रूप है। इस से आगे जाकर वह ध्यान तीसरी अवस्था में "अस्मिता" का दर्शन होता है। इसको महा तत्व भी कहते हैं, जिससे यह सृष्टि बनी है। उसके अन्दर प्रवेश होकर प्रतीत होता है कि प्रकृति क्या है, कोई रूप नहीं कोई रंग नहीं, कोई शब्द नहीं, कोई गन्ध नहीं, कोई अनुभव नहीं। वह प्रकृति का पहला विकृत रूप है। वह अवस्था जिसमें कुछ भी नही होता। तब ध्यान की चौथी परिपक्वावस्था आती है। यहां प्रकृति का वास्तविक रूप अन्तरात्मा देखता है। जब ध्यान की पांचवीं अवस्था आती है, तब ब्रह्म ज्योति के दर्शन होते हैं। ऐसी ज्योति कि अरबों सूर्य भी जिसके समान प्रभाव विहीन हो जाते हैं। अवर्णनीय है। वह परम आनन्द है कोई भी योगी उसका वर्णन नहीं कर पाया ध्यान की इस अवस्था में पहुंचकर ज्ञात होता है कि जड़ क्या है चेतन क्या हैं, आत्मा क्या है प्रकृति क्या है, शरीर और शरीर के अन्दर आत्मा कहाँ बैठा है ? यह स्पष्टतया प्रतीत होता है।

और ये सबकी सब श्रेणियां, ध्यान की ये सब अवस्थायें उस मनुष्य को मिलती है, जो गायत्री मन्त्र की उपासना करता है। उसकी वीणा जब गायत्री मंत्र की झंकार से गूंज उठती है, तब सब किवाड़ खुलने लगते हैं गायत्री की चोट प्रत्येक स्थान

पर पहुँच कर मनुष्य के मैल को स्वच्छ करती चली जाती है। गायत्री से वह बुद्धि मिलती है, जिसे 'प्रज्ञा' कहते हैं' जो 'ऋतु--म्भरा' है प्रज्ञा और ऋतम्भरा शब्द आपको कठिन प्रतीत होंगे। इसलिए इनका अर्थ आपके सामने रखता हूँ। 'बुद्धि वह ज्ञान है जो सचाईके वास्तविक रूप को जानती है। सचाईका वास्तविक रूपभी रहस्य प्रतीत होगा। आप कहेंगे सचाई तो सचाई है। इसका वास्तविक तथा अवास्तविक रूप क्या ? किन्तु यह बात ठीक नहीं। सचाई का भी वास्तविक तथा कृत्रिम रूप है। सचाई बद-लती रहती है। 'ऋत' उस सचाई का नाम है जो कभी नहीं बदलती। आपकी घड़ी में आठ बजे हैं। किसी ने पूछा—'भाई ! समय क्या है ?' आपने कह दिया—'आठ बजे हैं'। आधे घण्टे के बाद उसने पूछा—'समय क्या है ?' आपने कह दिया—'साढ़े आठ बजे हैं ।' दोनों बार आपने सच बोला, परन्तु सच बदल गया। 'ऋत' वह वास्तविक है जो कभी बदलती नहीं। उदाहरण के रूप में हम कहते हैं—'आग जलाती है।' यह केवल सत्य ही नहीं, किन्तु 'ऋत'भी है। क्योंकि आग आज भी जलाती है। आज से लाखों और करोड़ों वर्ष पहले भी जलती थी। कलियुग हो सतयुग, बूढ़ा हो जवान भारत हो या अमरीका, आग के जलाने का गुण नहीं बदलता। इस लिये बुनियादी (मौलिक) सचाई को जो बुद्धि जानती है उसे कहते हैं ऋत-म्भरा' अर्थात 'ऋत' से भरी हुई। ऐसी वास्तविकता को जानने वाली जो कभी बदलती नहीं बुद्धि, जब 'ऋतम्भरा' हो जाये, वास्तविक सचाई को जानने वाली हो जाये तब वह कभी कोई अयुक्त निर्णय नहीं करती। यह 'ऋतम्भरा' बुद्धि गायत्री मंत्र के जाप से मिलती है।

अब गोपथ ब्राह्मण में आई 'एकादसाक्षी' मोद्गल्य और वाल मैत्रेय की इस बात-चीत को सुनिये: जिसमें गायत्री की

महिमा एक दूसरे रुप से दिखाई गई है। एकादशाक्षी, जिसकी ग्यारह आँखें खुली थी, ऐसे मौद्गल्य से ग्लाव मैत्रेय ने पूछा-- "महाराज! गायत्री में जो 'सविता' शब्द आया है, इसे जो 'भर्गोदेवस्य' कहा है और इससे जो प्रार्थना की है कि तू हमारी बुद्धि को प्रेरणा कर, अब प्रश्न है कि क्या वास्तव में वह 'सविता' प्रेरणा करता है ?" मौद्गल्य ने उत्तर दिया—"हे मैत्रेय! वेद, छन्द अर्थात् आनन्द के साधन हैं। आनन्द को ऋषियों ने 'अन्न भी कहा है, क्योंकि आत्मा उस आनन्द के लिये वेद के पास आनन्द को खाता है। जब तक यह न मिले' तब तक भूखा रहता है। उस आनन्द रुपी अन्न को पाने का साधन जहाँ वर्णन किया गया' वहाँ स्पष्टतया कहा है कि सविता 'धी' को—'बुद्धि को और कर्म, प्रेरणा करता है।'

ग्लाव मैत्रेय ने पूछा—"हे ग्यारह आँखों वाले! सविता क्या है और सावित्री क्या है ?" मौद्गल्य ने उत्त रदिया— 'मैत्रेय! मन' सविता है और वाणी सावित्री है। मन प्रेरणा करता है तो वाणी बोलती है। ,अग्नि सविता है। पृथ्वी सावित्री है' जो कुछ इससे मांगो वही देती है। आम की गुठली दो तो आम देती है, मिर्च का बीज डालो तो उसी स्थान पर मिर्च भी देती है। नीम भी इससे होता है, गन्ना भी, सोना भी और चाँदी भी इसी में है, लोहा और पत्थर भी। इसका हृदय फाड़ो। कुदाल लेकर इसे खोद डालो, तो वह पानी भी देती हैं, मधुर मीठा पानी। किन्तु यह सब कुछ इसे देने के लिये अग्नि कहता है, अग्नि प्रेरणा न करे तो फिर कुछ भी नहीं होता। इस प्रकार 'वायु' सविता है। और यह ऊपर विस्तृत आकाश सावित्री है। 'आदित्य' सविता। 'चन्द्रमा' साविता है सौर 'नक्षत्र' सावित्री है। 'अन्न' सविता है और 'रात्रि' सावित्री है 'मेघ' सविता है

और 'वर्षा' सवित्री है। विद्युत 'सविता' है और उसकी 'कड़क' सावित्री है। जो इन जोड़ों को जान लेता है, वो पूरे एक सौ सोलह वर्ष तक सुख, आनन्द और भलाई के साथ जीवित रहता है। इसका अभिप्राय क्या है ? ये जोड़े क्या है ? वास्तव में यह विज्ञान की बात हैं। मौद्गल्य ने जो कुछ कहा वह यह कि सविता शक्ति ने केवल सृष्टि के प्रारम्भ में ही काम नहीं किया, अपितु आज भी वह करती हैं। भिन्न २ रूपों में यह शक्ति दूसरी वस्तुओं को प्रेरणा करती है। जो मनुष्य इस विज्ञान को जान लेता है, गायत्री की उपासना करके ध्यान में लीन होकर जो देख लेता है कि कौनसी वस्तु किसकी प्रेरणा करती है, उसके लिये इस संसार के रहस्य प्रकट हो जाते हैं। और जब ये रहस्य प्रकट हो जायें तब मनुष्य पूरे एक सौ सोलह वर्ष तक प्रत्येक प्रकार के सुख और आनन्द को भोगता हुआ जीवित रह सकता है।

आप पूछेंगे—'आनन्द स्वामी ! तूने इन रहस्यों को जान लिया है न ? तो क्या एक सौ सोलह वर्ष तक जीवित रहेगा ?" नहीं, मेरे भाई ! इस प्रकार सब कुछ ज्ञात नहीं होता। विज्ञान की पुस्कक पढ़ लेने से कुछ प्राप्ति नहीं होती, प्रयोगशाला में ही अनुभव करने पर ही प्राप्ति होती है। ध्यान की प्रयोगशाला में जाकर यह बोध होता है कि यह 'सविता' क्या है और 'सावित्री' क्या है ? मेघ और विद्यु त क्या है ? वर्षा और गर्जन क्या हैं ? इन सब बातों को जानने के लिए ध्यान में जाना पड़ता है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में गायत्री के तीन भागों में से प्रत्येक भाग का भिन्न-भिन्न फल बतलाया गया है। ऐसा कहा है उसमें कि गायत्री के इन तीनों भागों से तीन लोकों में, तीनों वेदों में और प्रत्येक प्रकार के जीवन में जो कुछ भी है उसे गायत्री का उपासक प्राप्त कर कर लेता है। किन्तु यह प्राप्त कर लेना केवल गायत्री को पढ़ लेने से तो नहीं होता, ध्यान में जाकर गायत्री के

प्रत्येक भाग पर विचार करना पड़ता है। कहां-कहां किस-किस वस्तु का सम्बन्ध है—यह समझना पड़ता है। तब प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति होती है। प्राप्त न हो सके, ऐसी कोई भी वस्तु बनी नहीं। परन्तु पहले समाधि अवस्था में जाना आवश्यक है।

परन्तु ये सब कठिन बातें हैं। इन्हें बहुत लम्बा नहीं करना हैं। केवल सविता की बात कहना चाहता हूँ कि वह मनुष्य के कल्याण के लिये निरन्तर प्रेरणा करती है। इसकी ध्वनि सुनने से कल्याण होता है। मनुष्य सीधे मार्ग पर चलता है। इसे भुला देने पर कोई काम भी नहीं होता। आजकल आप देखते हैं कि अन्तराष्ट्रीय शान्ति के लिए कितने साधन होते हैं ? कितने ढ़ंग प्रयोग में लाये जाते हैं ? कितनी बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं ? परन्तु हर बात उल्टी पड़ती है हर ढंग पहले से अधिक अशांति उत्पन्न कर देता है। यह बात यदि होगी नहीं तो और क्या होगा। भटक जो गया संसार, सुमार्ग को खोजो इसने दिया। सविता को भुला जो दिया इसने। सविता को भुलाने से कल्याण नहीं होता, केवल विनाश होता है।

अब सुनिए गायत्री की उपासना कैसे करनी चाहिये ?

जब कोई गायत्री की उपासना करना चाहता है, उन वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है जो निश्चित रूप से गायत्री माँ प्रदान करती है, उसके हृदय में सब से पहले एक प्रबल इच्छा होनी चाहिये। प्रारम्भ में मन नहीं लगता। तब इसे बांधकर लगाना पड़ता है। इसको बांधने के लिये प्रबल इच्छा का होना आवश्यक है छोटे बच्चे पढ़ने के लिए जाते हैं। प्रारम्भ में पाठशाला में जाने के लिये इनकी च्छा नहीं होती। कई बार बहाना करके कह देते है--'माँ। पेट में पीड़ा होती है।" मैं भी जब बच्चा था तो ऐसे बहाने किया करता था। परन्तु मेरी माता जी तो जानती थीं कि इसे पीड़ा काहे की है। पूछती कि पेड़े की पीड़ा

होती है या बर्फी की ? मैं कहता 'पेड़े की।' वे पेड़े मँगवा देती। मैं खाकर पाठशाला चला जाता और पीड़ा भूल जाता ? प्रारम्भ में मन को बांधना पड़ता है। तीव्र प्रबल इच्छा से ही वह बन्धन में आ सकता है और यह इच्छा प्रबल है या नहीं इसका ज्ञान इस बात से होता है कि जो कुछ हम चाहते हैं उसके अतिरिक्त किसी और वस्तु के लिए इच्छा न हो। घर, परिवार, व्यापार सब कुछ अच्छा होने पर भी ऐसे प्रतीत हों जैसे कहीं पर कोई बहुत बड़ी त्रुटि है। ऐसा प्रतीत हो कि चित्त उदास है और कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। महर्षि दयानन्द ने इस अवस्था को मोक्ष की इच्छा का नाम दिया है और कहा है कि मोक्ष की इच्छा वह है जिसके उत्पन्न होने के बाद और कुछ भी अच्छा न लगे। और कहीं भी शांति कीं प्राप्ति न हो जगतगुरु शंकराचार्य ने इस अवस्था को उस मछली की अवस्था से उपमा दी है, जो जल के बिना व्याकुल रही हो। मछली को पानी चाहिये और कुछ भी नहीं। संसार की सारी सम्पत्ति, समस्त कीर्ति, उसके सामने रख दो, पर किसी वस्तु से उसकी व्याकुलता न्यून न होगी।

"गंगा यमुना, सरस्वती हैं जग में भरपूर।
'तुलसी' चातक के लिए स्वाति बिना सब धूर।।'

चातक के विषय में प्रसिद्ध है कि वह आकाश में गिरने वाले स्वाति जल को छोड़कर और कुछ पान नहीं करता गंगा, यमुना और सरस्वती हैं, दूसरे नदी-नालों में अरबों टन पानी प्रतिक्षण बहता जा रहा है। परन्तु चातक के लिए वह पानी-पानी नहीं, धूल है। उसको केवल स्वाति की एक बूंद चाहिये। ऐसी अवस्था जब हो जाये जब जाप न हो तो मन व्याकुल सा रहे। ऐसा प्रतीत हो कि आज कोई बात अवश्य रह गई है तब समझना चाहिये कि वह प्रबल इच्छा विद्यमान है जो गायत्री की उपासना में सफलता पाने के लिये सब से पहली आवश्यक वस्तु है।

दूसरी आवश्यक वस्तु यह है कि जिस स्थान पर बैठ कर जाप, किया जाये वह अच्छा हो, कैसा स्थान अच्छा होता है— इसके विषयमें महर्षि दयानन्द के ये बचन सुनिये। सत्यार्थप्रकाश में वे कहते हैं।:—

"जब उपासना करना चाहें, तब एकान्त, शुद्ध, प्रदेश में जाकर आसन लगा प्रणायाम कर, बाहर की बातों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि में, चित्त में' कण्ठ में, आँखों में, शिखा में या पीठ के बीच की रीढ़ की हड्डी में किसी स्थान पर टिका कर आत्मा और परमात्मा को समझ कर मग्न हो जाने से अपने आपको वश में करें।" एकान्त शुद्ध देश का अभिप्राय है आपके घर का ऐसा भाग जहां कोलाहल नहीं होता। जहां आत्मा चिन्तन तथा प्रभु के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। या फिर कोई जङ्गल जो शुद्ध तथा पवित्र है जहां निर्मल जल बहता हो जहां किसी प्रकार का कोलाहल न हो, जो नगर से और जनता की भीड़ से परे हो, ऐसे स्थान पर जप करने से और गायत्री के अर्थ को समझकर कार्य करने से गायत्री की उपासना सफल होती है। एक बात याद रखिये कि गायत्री का जाप मन में करना चाहिए, केवल होठ या वाणी से नहीं। यदि प्रारम्भ में मन के अन्दर मंत्र बोला न जाये तो होठों से बोलने में भी हानि नहीं, किन्तु होठों से शब्द नहीं निकालना चाहिये। इस प्रकार बोलना चाहिए कि सर्वथा समीप बैठा हुआ मनुष्य भी उसे सुन सके। इस प्रकार जाप करने का फल क्या होता है, इसका उत्तर देते हुये महर्षि लिखते हैं—

"जब इन साधनों को करता है, तब उसका आत्मा और अन्तः करण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो. जाता है। प्रतिदिन अपने ज्ञान और विज्ञान को बढ़ाकर वह मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भी इस प्रकार ध्यान करता है वह

सदा ही उन्नति को प्राप्त होता है।" आगे चल कर वे फिर कहते हैं—

"जैसे शीत से ठिठरा हुआ मनुष्य आग के पास जाने से सरदी से बच जाता है। जैसे इसके लिए सरदी नहीं रहती, वैसे ही ईश्वर के समीप जानेसे सब मल और दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण; कर्म और स्वभाव के अनुसार जीवात्मा के गुण और कर्म पवित्र हो जाते हैं।" इसलिये परमेश्वर की प्रार्थना और उपासना अवश्य ही करनी चाहिये। इससे आत्माका बल इतना बढ़ेगा कि वह पहाड़ जैसा बड़ा दुःख आने पर भी घबरायेगा नहीं। सब को सहन कर सकेगा।

ऋषि के इन ऊपर के शब्दों में कितना सार है, कितनी सचाई है—यह तो साधना और उपासना करने वाला ही कोई व्यक्ति जान सकता है। धन्य हो, दयानन्द! कितने अनुभवकी बात कह दी तुमने। और सुना मेरे भाई! ऋषि को यह अनुभव एक दिन में नहीं मिला था, अट्ठाईस वर्ष तक घोर तप तपा उन्होंने गंगोत्री की कंदरा में, नर्वदा के तट पर, पहाड़ों की कन्दराओं में। कितने ही स्थान पर बैठ कर वे तप करते रहे। तब जाकर उन्होंने इन बातों को लिखा। एक और स्थान वे कहते हैं—

"वहां उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियों के लिक अच्छे हैं' किंतु व्यापारियों के लिये वहां पर वाणिज्य है।"

और मैंने भारतवर्ष भर में घूम कर देखा कि ऋषि की बात सोलह आने सच है। उत्तर काशी और गंगोत्री में सत्य ही ध्यान में सहायता मिलतीहै। परन्तु जो वाणिज्य करना चाहते हैं वह तो वहां भी व्यापार ही करते हैं कई भाई पूछते हैं कि योगी और ध्यानी गंगोत्री को क्यों पसन्द करते हैं। लो सुनो, इसका कारण भी बताये देता हूं।

गंगोत्री में इतना सन्नाटा सुनाई देता हैं कि कोई भी शब्द वहां

सुनाई नहीं देता, केवल गंगा की ध्वनि ही है। इस प्रकार गूंजती हुई जैसे कोई विशाल गम्भीर धुन में 'ओ३म्' कह रहा हो। मेघ वहां गरजते नहीं, बिजली कड़कती नहीं। वर्षा भी इस प्रकार होती है, जैसे सन्नाटे को थामकर नीचे आ रही हो। केवल थोड़े से महात्मा थोड़ी सी कन्दराओं और कुटियाओं में रहते हैं। वहां न सिंह हैं, न चीते' न मच्छर, न खटमल। सायंकाल से पूर्व वहां इक्का दुक्का यात्री भी गंगा के इस पार आ जाते हैं। उधर केवल गंगा की ध्वनि ही रह जाती है और गंगा की सभी धारायें एक साथ एक बहुत बड़े गड्ढ़े में गिरती हैं। गौरी-कुण्ड कहते हैं इसे। प्रसिद्ध यह है कि वहां बैठ कर माता पार्वती ने कई वर्ष तक ध्यान लगाया था, इस कुण्ड के अन्दर लगातार गिरती हुई गंगा की ध्वनि लगातार उठती हुई (ओ३म की ध्वनि सी प्रतीत होती है। वहां यदि चित्त नहीं लगेगा तो और कहां लगेगा किन्तु गंगोत्री की बात छोड़िये। मैं कह रहा था कि गायत्री जाप के लिए एकान्त, शुद्ध, स्वच्छ सुथरा होना चाहिये। कई मातायें कहेगी—आनन्द स्वामी! तूने सम्भवतः समझा है कि हम सब के पास बंगले और कोठियां हैं हालांकि हममें से मई लोगों का सारा घर ही एक कमरा है। इसी में सोना, इसी में खाना बनाना, इसी में बच्चे, इसी में पति हैं तब शांत, एकांत स्थान कहां मिलेगा? क्या तू हमारे घर में उथल पुथल मचाना चाहता है नहीं, मेरी माताओं! उथल पुथल मचाने की इच्छा नहीं है मेरी।

लखनऊ की एक बात आपको सुनाता हूँ। एक देवी मेरे पास आई। मुझसे गायत्री के जाप की विधि पूछी! मैंने कहा--"प्रातः तीन बजे स्नान आदि से शुद्ध हो कर जाप किया करो।" तीसरे दिन वह मेरे पास आई बोली—"मेरे पति ने मुझे घर से निकाल दिया है।' मैंने आश्चर्य से कहा—"घर से क्यों?" उसने

बताया कि घर में केवल दो कमरे हैं। एक कमरे में सब लोग सोते हैं। दूसरे में प्रातः उठ कर स्नान करने लगी तो स्नान करने का शब्द हुआ, गला साफ करने का, कोई बर्तन इधर उधर रखनेका, कुछ पानी गिरनेका। पति देव की नींद खुल गई। क्रोध में बोले--"बड़ी भक्ति सवार हो गई है। रात को सोने भी नहीं देती। दिन भर कार्यालय में आराम नहीं, रात को यह नहीं सोने देगी।" दूसरे दिन इतनी सावधानी से काम लिया। यत्न किया कि शब्द न हो, किन्तु बर्तनों का शब्द फिर हो गया। पति महाराज उठ कर बैठ गये, चिल्ला कर बोले '--भक्ति करनी है तो जा समाज मन्दिर में! मेरे घर में यह सब कुछ नही चलेगा। निकल यहां से।' मैंने उनसे कहा--देखों देवी! स्नान करना बहुत आवश्यक नहीं है। वास्तविक बात तो जाप करना है। स्नान का यदि सुभी'ता नही तो स्नान न करो। जैसा स्थान मिलता है वैसे स्थान पर जाप करो स्नान करना तो छोटी बात है।'

परन्तु क्या करें हमारे देश में कई छोटी-छोटी बातें ही बड़ी-बड़ी बातें बन गई हैं। और बड़ी बातों को भुला दिया गया है। अब प्रयाग के कुम्भ मेले को देखिये। मेला होता था इसलिये कि लोग साधू और महात्माओं से ज्ञान की बात सुन सकें। वह बात तो भुलादी गई। स्नान करना ही कुम्भ मेले पर जाने का वास्तविक उद्देश्य हो। गया एक विशेष समय पर ही स्नान करना चाहिये—इस भ्रम ने कितने ही मनुष्यों की जान ले ली। उन्होंने समझा कि स्नान करने से मुक्ति होती है। केवल ढाई हजारकी तो मुक्ति हो गई यहाँ।

नहीं, छोटी बात को बड़ी बात बनानेका प्रयत्न नहीं करना। इसके लिये बड़ी बात को छोड़ नही देना। जो जैसे हो वैसे ही जाप करे। मैं किसी के घर में उथल पुथल मचाने नहीं आया हूँ। मैं आनन्द स्वामी हूँ, दुःख स्वामी नहीं हूँ। कई मनुष्य कहते

हैं कि ऐसी अवस्था में भोजन कैसे हो सकता है ? इन्हें एक बात सुनाता हूँ—

एक था किसान नये कुए के पास गद्दी पर बैठा बैलों को चला रहा था। बैल चलते थे। पानी कुंए से बाहर आता था। कुंए में लगी हुई माल नीचे जाती थी और वह पानी लेकर ऊपर आती थी। इससे चीं चीं की ध्वनि होती थी। एक मनुष्य अपने घोड़े को पानी पिलाने के लिये वहाँ आया। परन्तु घोड़ा चीं-चीं की ध्वनि से डरा, पीछे हट गया। उस आदमी ने उस घोड़े को फिर आगे किया; परन्तु वह फिर डरा और फिर पीछे हट गया। घोड़े वाला घोड़े की लगाम पकड़ कर खड़ा हो गया। कुछ देर बीत गई तो किसान ने पूछा—'भाई! क्या बात है ?; घोड़े वाले ने कहा—"घोड़े को पानी पिलाना है।" किसान ने कहा—"तो पिलाओ न।" घोड़े वाला बोला—'घोड़ा इस ची-ची की ध्वनि से डरता है। यह बन्द हो जाये तो इसे पानी पिलाऊं।" किसान ने हंसकर कहा—'अरे भोले मनुष्य! यदि यह ची-ची बन्द हो गई, तो पानी भी बन्द हो जायेगा। घोड़े को पानी पिलाना है तो इसी ची-ची में पिला लो, नहीं तो घोड़ा प्यासा रह जायेगा।"

सुनो मेरी माताओं तथा सज्जनों!

यदि कोई दूसरा स्थान न मिले तो घर की और बच्चों की ची चीमें ही जाप करो। मन के घोड़े को पानी पिला लो, नहीं तो फिर समय नहीं मिलेगा।

अब जाप के विषय में तीसरी बात सुनो। तीसरी आवश्यक बात है आसन। आसन का अभिप्राय: है शरीर की वह अवस्था जिसको बदले बिना ही अधिक से अधिक देर तक आप सुख से बैठ सकें। साधारण आसन है पद्मासन, पालती मार कर बैठना पावों को टांगो के ऊपर करके। एक दूसरा आसन है सुखासन। इसमें केवल पालती मारी जाती है। पांव चाहे ऊपर हो या नीचे

किन्तु कई मनुष्यों के लिये तो पालती मारना भी कठिन होता है। कई लोग कहते हैं, 'हमारे घुटने पीड़ा करते हैं।' कई कहते हैं 'हमारी कमर में पीड़ा होने लगती है।' ऐसे लोगों को समझना चाहिये कि जप करने के लिये पालती मारना आवश्यक नहीं। आसन का अभिप्राय केवल पालती मार कर बैठना नहीं है। जिस प्रकार से भी तुम अधिक से अधिक काल तक सुख पूर्वक बैठ सको या लेट सको वही तुम्हारा आसन है। और कुछ न हो सके तो शवासन में शव (मुर्दा) की तरह लेट जाने से भी काम चल जाता है। ऐसा करना हो तो कपड़े के छन्ने से दोनों पांव के अंगूठे आपस में जोड़ कर बाँध देने चाहिये, जिससे कि वे हिलते न रहें। कमर में एक कपड़ा बांध कर हाथ इसके अन्दर कर लेने चाहिये। बन जायेगा, मुर्दा (शव)। यह शवासन है। या कोई भी दूसरा आसन हो उसको करें।

वास्तविक आवश्यकता इस बात की है कि पीठ और ग्रीवा दोनों एक सीध में रहें। पीठ और ग्रीवा एक सीध में रखना इसलिये आवश्यक है कि इसके बिना उन आठ चक्रों में ध्यान नहीं लगाया जा सकता, जहाँ मन को स्थिर किये बिना ठीक रीति से जप नहीं होता नीचे जहां रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है वहां मूलाधार-चक्र है और सिर में तालु के ऊपर ब्रह्म-रन्ध्र या ब्रह्म-चक्र। इन दोनों के बीच छः दूसरे चक्र हैं। जिनके विषय में आपको पहले सुनाया था। प्रारम्भ में ध्यान लगाने के लिये सब से अच्छा स्थान 'आज्ञा-चक्र' है। दोनों आंखों के बीच वह स्थान जहाँ से नाक प्रारम्भ होती है। किन्तु अनेक व्यक्ति आज्ञा चक्र में ध्यान लगाते हैं तो उनका सिर दुखने लगता है। उन्हें चाहिये कि वे आज्ञा-चक्र के स्थान पर अपने हृदय में ध्यान लगायें। उस स्थान पर ध्यान लगाये जहाँ दोनों स्थनों के मध्य में गढ़ा सा है। आज्ञा-चक्र को ध्यान लगाने का सब से अच्छा स्थान कहा गया

है। यह इसलिये कि यहां गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह इंडा, पिंगला और सुषुम्णा की तीन नाडियां मिलती हैं। सुषुम्णा रीढ़ की हड्डी से होती हुई नीचे से ऊपर तक आती है। इससे निकल अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियां समस्त शरीर में फैली रहती हैं। ईडा और पिङ्गला इसके दायें और बायें चलती हुई आज्ञा-चक्र में उसके साथ मिल जाती हैं। यह वास्तविक प्रयोग है। जहां ज्योति का ध्यान करना चाहिये या फिर 'ओ३म' शब्द का। जैसे कोई कागज पर लिखता है, इसी प्रकार ध्यान से इसस्थान पर 'ओ३म्' लिखो, लिखने के थोड़ी देर बाद वह मिट जायेगा। तब फिर लिखो। बार-बार वह मिट जायेगा। बार-बार लिखो। अन्त में ऐसी अवस्था आयेगी कि वह मिटेगा नहीं। जब कभी आंखें बन्द करोगे, तभी 'ओ३म्' दिखाई देगा। यह आज्ञा-चक्र वह स्थान है, जहाँ आत्म-दर्शन के मार्ग पर जाने का आदेश-पत्र (परिमिट) मिलता है। आज्ञा का अर्थ है पासपोर्ट (पारपत्र) चक्र का अर्थ है कार्यालय। यह पासपोर्ट देने का कार्यालय है, जहाँ 'ओ३म्' का शब्द धीरे-धीरे ज्योति का रूप धारण करने लगता है। जब यह ज्योति जागृत हो उठे, तब इतना आनन्द मिलता है कि भक्त कुछ सुनना नहीं चाहता। भूल जाना चाहता है वह सब कुछ, पुकार के कहता है मत बुलाओ मुझे। इस आनन्द में डूब जाने दो जब यह अवस्था आ जाये तो संकल्प करना चाहिये कि मेरा संसार के साथ परिवार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। केवल मैं हूँ और मेरे भगवान् हैं, शेष तो किसी की आवश्यकता इस समय नहीं रहती। वे पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ। वे स्वामी हैं, मैं उन का दास हूँ। वे मेरे प्रियतम हैं, मैं उनका चाहने वाला प्रेमी हूँ।

कई लोगों का कहना है कि अपने आपको स्त्री मान कर और भगवान को पति मान कर ध्यान लगाने से शीघ्र ही सफलता मिलती है, किन्तु किसी भी रूप में ध्यान लगाओ, उस समय भूल

जाओ कि तुम्हारा और भी कोई है ऐसे अनुभव करो कि मैं हूं और मेरे भगवान् और तीसरा कुछ भी नहीं है।

जब ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाये तो प्रारम्भ करो। यदि हृदय से नहीं कर सकते तो होठों से करो। परन्तु तुम्हारा शब्द किसी को सुनाई न दे, चाहे तो माला अपने हाथ में ले लो। माला केवल गिनती रखने के लिये है। और यह गिनती कई बार आवश्यक भी होती है। ऐसा लिखा है कि एक दिन में पच्चीस हजार गायत्री का जप करने के पश्चात् मन स्वयं ही खड़ा हो जाता है, वश में हो जाता है। आसन के द्वारा भी मन वश में होता है। यदि मनुष्य तीन घण्टे और छत्तीस मिनट तक एक ही आसन से हिले बिना कष्ट बिना आँख को झपके बिना बैठ सके तो उसका भी मन खड़ा हो जाता है। मन को वश में करने के लिये ये स्थूल उपाय हैं। जो मनुष्य कहते हैं कि मन वश में नही होता, उनसे मैं कहता हूँ कि इस ढंग पर चल कर देखो, वह मन जिसके विषय में लोगों की धारणा है कि—

"मन लोभी, मन लालची मन चंचल मन चोर !।
मन के मते न मानिये, बिलख बिलख मन रोये।"

इसे वश में करने के लिये इस सरल ढंग को अपना कर देखिये जिस प्रकार मेघ में विद्युत चमकते है, इसी प्रकार मन भगवान की ओर संकेत करेगा, उसकी ओर चलेगा। यह मन की बिजली बहुत शक्तिशाली है। साधारण बिजली ही बहुत शक्ति वाली है। बिजली से आप प्रकाश करते हैं, पंखे चलाते हैं, मशीनें चलाते हैं। बम्बई में मकानों के अन्दर बिजली के लिफ्ट लगे है। बिजली से बड़ी रेलवे-ट्रेनें दौड़ती हैं। बुद्धि से वश में कर लिया जाये बिजली को तो इतने काम करती है वह। इनसे अधिक भी काम करती है। परन्तु वही बिजली नियन्त्रण से बाहर हो जाये तो नाश और विध्वंस भी कर देती है। कई-कई विशाल अट्टालि-

काष्ठों को जलाकर भस्मसात् भी कर देती है। यह मन भी ऐसा ही है। कई दिनों से आपने इसको नियन्त्रण से बाहर कर रक्खा है। अब बुद्धि के साथ इसको वश में करो, तो यह वहां पहुँचेगा जहाँ आपको जाना है।

"मन पंछी तब लग उड़े विषय वासना माहीं।
ज्ञान बाज,की झपट में जब लग आया नाहीं।"

ज्ञान का बाज क्या है ? वह बुद्धि जिसे परमात्मा ने प्रेरणा दी हो, जो अपने आपको परमात्मा के अर्पण करके उसकी प्रेरणा से चलती हो। इसीलिये गायत्री में एक ही प्रार्थना है—"मेरी बुद्धि को अपनी ओर ले चल।"

अन्त में एक बार फिर यह कह देना चाहता हूं कि जप मन से करना चाहिये। प्रारम्भ में यदि न भी हो तो भी अन्त मन से करना ठीक है। मन से जो बात कही जाये, उसका अधिक प्रभाव पड़ता है। ऐसे जप को मानसिक जप कहते हैं।

अब एक और बड़े महत्व की वस्तु आपको बताने लगा हूँ। ऐसी विधि कि जिससे एक सप्ताह के अन्दर ही गायत्री में मन लगने लगेगा। विधि वह है कि अपने मन को बाँध लीजिए। आप कहेंगे कि यह अच्छी विधि है। किन्तु देखो, कठिन नहीं है। वेद में, गीता में उपनिषदों में और योग दर्शन में मन को वश में करने की एक बहुत सरल विधि बताई गई है कि मनुष्य प्रत्येक समय प्रसन्न रहने की अपनी प्रकृति बना ले। मन यदि प्रसन्न रहे तो सरलता से टिकता है। फिर बहुत यत्न करना नहीं पड़ता। परन्तु इस सीधी सी और सरल सी बात को हम प्रायः करते नहीं। नौकर ने प्याली तोड़ दी। हम उसको भी गालियाँ दे रहे हैं। घर वाली को भी गरम-गरम बातें कह रहे हैं। अपना चित्त भी जला रहे हैं। अरे ! आठ आने की प्याली टूट गई तो टूट गई, तुम अपना करोड़ों रुपये का मन क्यों

तोड़ देते हो ? ईश्वर को कहते हो —'सत-चित आनन्द' आनन्द स्वरूप, आनन्द का भन्डार। उसे मिलना है, तो हमें भी अपने अन्दर आनन्द पैदा करना होगा। सर्वदा प्रसन्न रहने का स्वभाव डालना होगा। याद रक्खो—

कुनद हम जिन्स बा हम जिन्स परवाज।
कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़ ।"

जो मनुष्य अपने जैसे को मिलना चाहता है, वह मिल जाता है। जुवारी सौ कोस का फेर मार कर भी जुवारी को जा मिलता है। तुम प्रसन्न रहोगे तो 'आनन्द' से भगवान् भी शीघ्र ही मिलेंगे। आपने रामायण तो पढ़ी है या सुनी है इसमें भगवान् राम की एक-एक दिन की बात लिखी है। परन्तु क्या कहीं यह भी लिखा है कि श्रीराम को कभी इन्फ़्लुएंजा हुआ, कभी मलेरिया हुआ, कभी जुकाम हुआ ? क्यों ? उसका उत्तर यही है कि वे सदा प्रसन्न रहते थे। महर्षि वाल्मीकि ने इन्हें नाम ही दिया है सदा प्रसन्न राम।'

मन प्रसन्न रहे तो शरीर भी स्वस्थ रहता है। प्रत्येक समय शिकायतें करते रहने, प्रत्येक मनुष्य के दोष निकालने का स्वभाव अच्छा नहीं। वह मनुष्य के शरीर को भी अस्वस्थ बना देता है। जिसके विषय में कोई शिकायत हो, उसकी बुराई को भूलकर किसी विशेषता को याद करो। उसमें यदि सारे ही दोष हैं तो अंत में कोई न कोई गुण भी तो होगा। इसका विचार करते हुए तुम प्रसन्न रहो।

एक और बात सुनो ! प्रसन्न रहने का एक दूसरा ढंग है। यदि किसी मनुष्य की कोई बात आपको अच्छी नहीं लगती, तो उसे सबके सामने कुछ भी न कहो, एकान्त में जाकर प्यार से कहो। कल यहाँ पर कोई मनुष्य आ जाये और मुझे कहे 'आनन्द स्वामी ! तू कैसा संन्यासी है ? संन्यासी होकर भी पगड़ी पहन रक्खी है

तूने।" मैं कहूंगा—"जो पहन रक्खी है तुझे इससे क्या ?' परन्तु यदि वही मनुष्य एकान्त में आकर मुझे कहे—"देखो' यह पगड़ी तुम्हें अच्छी नहीं लगती। तो मैं कहूँगा—'यह ले भाई (और स्वामी जी ने सचमुच ही अपनी पगड़ी उतार कर एक ओर रखदी। सभी लोग हंस उठे। स्वामी जी कहते रहे) 'यह है प्रसन्न रहने की विधि। पति को पत्नी से। पत्नी को पति से मां को बेटे से किसी को किसी से शिकायत हो तो उसे एकांत में बुलाओ। इससे प्रसन्नता होगी और प्रसन्न से मन एकाग्र होता है

अन्त में गायत्री के जाप के सम्बन्ध में एक दो बातें और बताता हूँ जब एक या दो वर्ष जप करते हो जावे, तब वर्ष में एक सप्ताह या एक महीना ऐसा निकालना कि गायत्री जाप के अलावा और कुछ न हो। ऐसा करने से ईश्वर की 'भर्ग' शक्ति सारे पापों को, समस्त मल को जलाकर भस्म कर देगी यह बात आवश्यक है। इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि जितनी बार यह जप करने का व्रत आप एक बार में उसे प्रतिदिन पूरा करें यदि कभी अस्वस्थता के कारण या किसी दूसरे कारण से कभी रह जाय तो बाद में उसे पूरा करना आवश्यक है !

यह सब आपको क्यों बताता हूं। इसलिए कि यह मानवीय शरीर बार बार नहीं मिलता। इसको पाकर भी यदि प्रभु को नहीं मिलोगे तो फिर कब मिलोगे। पुराने समय की एक कहानी आपको सुनाता हूँ। तब लोग काश्मीर जाने के लिए मोटरों में नहीं ताँगों पर जाते थे। ।रावलपिण्डी में एक सेठ साहब पहुँचे एक ताँगे वाले से बोले—'क्यों भाई! काश्मीर चलना है। कितना किराया लेगा ?"ताँगे वाले ने देखा कि सेठ धनी पुरुष हैं बोला 'किराया क्या लेना है सेठ जी। टांगे और घोड़े का जो खर्च आएगा, वह दे देना। घोड़े को चारा दिलवा देना आवश्यकता पड़े तो तांगे की मरम्मत करा देना।" सेठ जी ने

कहा—"यह तो सस्ती सवारी है, चल।" सेठ गये बैठ, चला ताँगा, पहुँचा कोहमरी में। तांगे वाले ने कहा—'सेठ जी ! आप हैं कुलीन सभ्य पुरुष। तांगे की गद्दियां हो गई हैं पुरानी। आपकी शान के योग्य नही हैं। यदि आप कहे तो कोहमरी में दो दिन रहकर गद्दियां बदलवा लें। सेठ ने कहा—"अवश्य।" बद-लवाने के लिये रुपये दे दिये और गद्दियां ठीक हो गई। किन्तु फिर रोगन खराब लगने लगा। सेठ ने और रुपये दे दिये और कहा—'रोगन भी नया कराओ।" नये' रोगन होने लगा। दो दिन के स्थान पर बारह दिन व्यतीत हो गये। पास से जाने वालों ने कहा—"यात्री तू किस झंझट में फंस गया ? अरे आकाश में मेघ एकत्रित हो रहे हैं। यदि अधिक विलम्ब करेगा तो माग में ही हिमालय हो जाएगा और श्रीनगर पहुंच नहीं सकेगा।" सेठ ने कहा—"श्रीनगर मुझे जाना है अवश्य, परन्तु पहले तांगा तो ठीक करालूं। तब और कुछ दिन बीत गये। रंग रोगन सब कुछ हो गया। तांगा बन गया। निश्चय हुआ कि दूसरे दिन चलेंगे। किन्तु रात को आया तूफान, वर्षा हुई वेग से, रंग रोगन सब उतर गया। तांगे कीं अवस्था बिगड़ गई। इसलिये तीसरे दिन से फिर रंग रोगन होने लगा। तांगे वाले ने कहा -'सेठ जी ! तांगे को रखने के लिये कोई मकान तो है नहीं। फिर तूफान आ गया तो रोगन फिर खराब हो जायेगा। आप कहें तो तांगे को रखने के लिए एक मकान बनवा लिया जाये।" सेठ ने कहा—"हां, अवश्य बनवाओ।" लोगों ने कहा—'यात्री किस धंधे में पड़ा है तू ! अरे ! शरद् ऋतु समीप आ रही है। श्रीनगर के मार्ग हिम से रुक जायेंगे। सेठ ने कहा—'ठीक है, किन्तु पहले तांगा तो बन जाये।" इस तरह कई दिन व्यतीत हो गये। तब एक भारी तूफान उठा, हिम का तूफान। पहाड़ और अगले हिम से भर गये। सेठ जी श्रीनगर में पहुँच नहीं

सके। माथा पकड़ कर बैठ गये।

आप कहेंगे बहुत गलती की सेठ ने। हाँ भाई! भूल की उस सेठ ने, परन्तु तुम वह भूल न करो। तुम्हारा यह शरीर जो किराये का तांगा है। किराया दो तो यह चलता है। चार दिन रोटी न खिलाओ तो अन्दर से शब्द आवेगा-"निकल जाओ यहां से।" दो दिन पानी न पिलाओ तो रजिस्टर्ड नोटिस आयेगा-'निकलो तुम्हारे लिये स्थान नहीं।" यदि थोड़ी देर हवा न हो तो नोटिस तार द्वारा मिलेगा-निकलो। अरे! इस शरीर का स्वामी मैं कैसे हूँ? मेरा यह है नहीं मैं तो किरायेदार हूँ किराया देता हूँ, रहता हूँ। कभी इसमें मलेरिया आ घुसता है, कभी खांसी कभी जुकाम। कोई मुझसे पूछता है कि अन्दर आऊं या न आऊं फिर मैं स्वामी कैसा हुआ? मैं स्वामी हूँ नहीं। मैं किराया देकर इस टांगे पर बैठा हूं ओ किराये के तांगे में यात्रा करने वाले! याद रख, मृत्यु का हिमपात होने वाला है। तू यहां ताँगे को संवारने में, रोगन करने में और सजाने में बैठा है। वहां तेरी मंजिल का मार्ग बन्द होने वाला है। अब सचेत हो। यात्री! इस पवित्र गायत्री मंत्रका सहारा लेकर मंजिल की ओर :

भरमते भरमते देहरथ हुआ है चकना चूर।
प्रीतम- नगरी जीव रे अभी बड़ी. है दूर॥

ओ३म् शम्

आरती

कृपा करो हे नाथ !

श्री रणबीर की लिखी हुई वह आरती जो कि पूज्य स्वामीजी की कथा के अवसर पर गाई जाती रही और जो प्रतिदिन पूजा-पाठ और हवन के बाद गाई जा सकती है ।

विनय सुनों हे नाथ जी, दीनबन्धु भगवान ।
जो आए तुम्हारी शरण, उसका हो कल्याण ॥
तुम हो अभयदान के दाता, तुम हो भवसागर के त्राता
तुम हो सतत सुखद शुभ रूपा, रवि शशि सबके हो तुम भूपा ॥
रात दिना ये सब कुछ तुम से, गर्मी सर्दी वर्षा तुम से ।
फूल यहां पर वृक्ष वहां पर तेरी महिमा कहां कहां पर ॥
चन्दा में मुस्काने वाले, बादल में ओ गाने वाले ।
सूरज में प्रकाश तुही है, जल थल अग्नि आकाश तुही है ॥
रूप तेरा है कण कण अन्दर । सारा जग है तेरा मन्दिर ॥
भीतर बाहर सब जगह, तेरा ही विस्तार ।
नाम तेरा ही गूंजता, विश्व रूप कर्तार ॥ १ ॥
नदियां तेरा गीत सुनाती ।"पार न पाया" कहतीं जातीं ।
घोर घटा जब नभ में आती । गरज गरज तब नाम सुनाती ॥
लहरों के सौ हाथ उठाकर । "तुही तुही" कहता सागर ॥
भौंरा फूलों के तानों में । कहता नाम मधुर तानों में ॥
और ये आंधी और बवंडर । करते फिरते हर हर हर हर ॥
उछल उछल कर जलती ज्वाला । कर में लेकर भक्ति प्याला ॥
कहती पीले प्रीतम प्यारे । जग है सारा तेरे सहारे ॥

जल थल पवन आकाश में परम पुण्य सुखधाम ।
गूंज रहा हर जगह छिन छिन तेरा नाम ॥ २ ॥
सागर उछल बल से तेरे । सूरज चन्दा चाकर तेरे ।
नदियां में तूफान उठाता । गिरी गह्वर में ज्वाला जलता ॥
तेरे बल का पार न पाया । सारा जग है तेरी माया ॥
धनियों का धन तू ही तो है । बलियों का बल तू ही तो है ॥
निर्झर बनकर झर झर करता । दानी बनकर झोली भरता ॥
शैशव में मुस्काता तू है । यौवन मस्त बनाता तू है ॥
फूलों शूलों धूलों में तू । वृक्षों, पत्तों, नदियों में तू ॥
जल थल आकाश में तेरा ही है व्यास ।
तू ही तो करुणा नीधि सरव जगत की आस ॥ ३ ॥
तुझको है करुणाकर कहते । तुझे दया का सागर कहते ॥
तेरी करुणा अथक कहानी । दया तेरी से जीये प्राणी ॥
तेरी दया से दीन दयाल । शीतल होती है अघ ज्वाला ॥
सर्व जगत में तब करुणाई । दया मया माया प्रभुताई ॥
माँ की मधुमया ममता तू है । त्राता सारे जग में तू है ।
दीन शरण तू दीन दयाला । करुण चरण तव परम कृपाला ॥
करुणा का तब लिये सहारा । पंगू पाते पार किनारा ॥
असरण शरण हे पुण्य चरण दीनबन्धु भगवान ।
करुणा करके राखिए दास आपनो जान ॥ ४ ॥
तुझ बिन अपना कौन सहारा । तुझ बिन भव का कौन किनारा ।
मात पिता प्रिय बन्धु तू है । मीत हमारा केवल तू है ॥
रात दिना हम तेरे सहारे । रात दिना तू साथ हमारे ॥
छोड़ तुझे अब जग के नाथा । कहाँ झुकायें अपना माथा ॥
किसे सुनायें बिपदा अपनी । किसे दिखायें पीड़ा अपनी ॥

तुझ बिन और नहीं जग नाथा । जिसे सुनायें अपनी गाथा ॥
सुनने वाला तू ही तो है । और हमारा जग में को है ॥

करुणा निधि करुणा करो अपना किंकर जान ।
मात पिता सम राखियो तेरी हैं संतान ॥ ५ ॥

हमको दीजै प्रभु धन धाना । यश बल दीजै औ सुख नाना ॥
देना हमको मान सुहाना । निज बल से बलवान बनाना ॥
रोग शोक भय निर्धनताई । दूर रहें हम से कठिनाई ॥
भरा भरा ये घर हो सारा । गूंजे इसमें नाम तिहारा ॥
याचक दुखिया जो भी आये । अपने मन की आशा पाये ॥
सुख की वर्षा नित हो यहां पर । न हो दुख का नाम यहां पर ॥
रात दिना हम बढ़ते जायें । धन यश कीरत सुख मुस्कायें ॥

धनबल यशबल कीर्तबल भरे भरे भण्डार ।
तेरी करुणा से मिले हम को हे कर्तार ॥ ६ ॥

हम को अपनी राह चलाना । करुणामय निज रूप दिखाना ॥
गूंजे हर दम नाम तिहारा । रिक्त न हो ये कोश हमारा ॥
गीत तेरे हों मन में अपने । तेरे ही बस देखें सपने ॥
राह तेरी से हट ना जायें । चाहे कष्ट हजारों आयें ॥
जग के धन्दे पूरे करके । पहुंचे पास तेरे भव तरके ॥
अन्त समय जब आये हमारा । अधरों पर हो नाम तिहारा
जब ये टूटे प्रभु जग माया । तेरे चरण को पायें छाया ॥

सुखद चरण तेरे प्रभु मेरा नित ये माथ ।
शरण पड़े की लाज को राखो दीनानाथ ॥ ७ ॥